नश्तर और आंसू

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

पत्थर और आँसू

पत्थर और आँसू

(नाटक)

रेवती सरन शर्मा

नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
६६, दरियागंज, दिल्ली

आप इन नाटकों को अपने कालिज या स्कूल के स्टेज पर खेल सकते हैं, परन्तु लेखक आशा करता है कि आप निम्नलिखित पते पर उसे सूचित करने का सौजन्य अवश्य प्रदर्शित करेंगे :—

रेवती सरन शर्मा

YZ—44 सरोजनी नगर

नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : अप्रैल १९६०

चित्रकार : पसरीचा

मूल्य ४ रुपया

इण्डिया प्रिंटर्स, एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली में मुद्रित

आल इण्डिया रेडियो

के

निम्नलिखित कलाकारों को समर्पित,

जिन्होंने

मेरे मूक नाटकों को वाणी प्रदान की

निर्देशक

एफ़० सी० माथुर हरीश खन्ना इस्लामुद्दीन

कलाकार

राजेश्वर नाथ मधुमालती राजकुमारी माथुर

मुख्तार अहमद मधु माथुर सलीमा अहमद

लीला चिटनिस वनमाला

गुलशन कपूर

नाटक

चढ़ाव उतार

पात्र

शैलेन्द्र	:	एक चित्रकार—
इला	:	उसकी पत्नी
श्याम	:	शैलेन्द्र का मित्र
कुसुम	:	श्याम की पत्नी
डाक्टर	:	एक बूढ़े, भारी-से बदन के फिलासफ़र
नौकरानी	:	

[आधुनिक ढंग का ड्राइंग रूम, जो बड़ी खूबसूरती से सजा है। चारों ओर मेहमान बैठे हैं। बीच में बैठी शैलेन्द्र की नवविवाहिता पत्नी, कोई गीत गा चुकी है। उसका गाना समाप्त हो गया है, केवल प्रशंसा की तालियाँ सुनाई देती हैं।]

श्याम : भाभी जी, आपने तो कमाल कर दिया।

डाक्टर : वाक़ई। हमारी बिटिया तो बहुत अच्छा गा लेती है।

कुसम : **(स्वच्छन्द हास्य के साथ)** क्यों न हो। मियाँ जी बड़े चित्रकार और बीबी साहिबा बड़ी गाने वाली। कलाकारों का महामिलन हुआ है।

इला : **(लज्जायुक्त शिकायत के स्वर में)** अच्छाजी, आप भी मुझे बनाने चली हैं?

कुसुम : तुम्हें बनाऊँगी, और आज की रात, शादी की पहली रात? भई मेरा काम तो तुम्हें सजाना ही हो सकता है। बनाएँगे तो ये तुम्हारे पेंटर साहब।

डाक्टर : **(इस मज़ाक में शामिल होते हुए)** लो, यहाँ तो इस बात पर झगड़ा शुरू हो गया कि किस को क्या करना है। खैर, इससे मुझे याद आ गया कि मुझे क्या करना है। मुझे अब ऊपर अपने कमरे में चल देना चाहिए।

शैलेन्द्र : क्यों डाक्टर, ऐसी क्या जल्दी है? आप बैठिये।

कुसुम : ओहो, जनाब बोले तो सही। डाक्टर एक बार और कहिये कि आप जाना चाहते हैं, ताकि पेंटर साहब की आवाज़ एक बार और सुनाई दे जाए। शादी क्या करके लाए हैं, आज

सुबह से बोलना ही बन्द कर रखा है। गंभीर बनकर रोब डाला जा रहा है।

श्याम : अरे तुम इसका मतलब नहीं समझतीं कुसुम। इन हज़रत की खामोशी, संजीदगी और माथे पर पड़ी हुई शिकनों का मतलब है कि किसी तरह हम यहाँ से दफ़ा हो जाएँ और जनाब को रोमांस लड़ाने का जल्द से जल्द और ज़्यादा से ज़्यादा मौका मिल जाए। (**नाटकीय ढंग से**) और भाई है भी ठीक। शादी की रात, दस का समय और दोस्तों का हजूम—उनके टलने के आसार नज़र न आएँ तो बेचारा शैलेन्द्र और क्या टैकनीक इस्तेमाल करे।

डाक्टर : (**क़हक़हा लगाकर**) बहुत खूब। भई श्याम, तुम ने शैलेन्द्र के दिमाग़ को क्या खूब रीड किया है।

शैलेन्द्र : अच्छा डाक्टर, आप भी इसे लिफ़्ट देने लगे। भगवान् के लिए इस पर रहम खाइये। अगर आपने दो चार बार इसकी बातों का समर्थन कर दिया तो इसके क़दम ज़मीन पर न पड़ेंगे। यह आँखें मूँदे, हँवा में नाक उठाए, यूँ चला करेगा जैसे ज़ीने पर चढ़ा जा रहा हो।

श्याम : देखिये डाक्टर, आ गया अपनी ज़ात पर। सच्ची बात कह दी तो फबती कसने पर उतर आया। आइये डाक्टर। और कुसुम, तुम भी इला से विदा ले लो। हम लोग चलें, वरना यह मन ही मन में गालियाँ देता रहेगा।

शैलेन्द्र : अबे देख, ज़्यादा बकवास न कर, वरना ये रंग घुले रखे हैं। ऐसी खातिर तवाज़ो करूँगा कि बाहर निकलते ही लोग गधे पर उल्टा बिठाने के लिए हाथों हाथ लेंगे।

डाक्टर : (**हँसते हुए**) अरे नहीं भाई नहीं। ऐसा न करना, वरना बाहर निकलते ही लोग तो मुझे हाथों हाथ न लेंगे, हाँ बच्चे ज़रूर मेरे ऊपर पत्थर फेंकते हुए पीछे दौड़ेंगे। मेरा

बदन वैसे ही भारी है, जान बचाने के लिए दौड़ भी न सकूँगा।

इला : (**अपने पति के हिमायत के स्वर में**) नहीं नहीं डाक्टर, इन्होंने आपको तो नहीं कहा। ये तो इन दोस्तों दोस्तों का मज़ाक़ है। ये तो आपकी बेहद इज्ज़त करते हैं।

डाक्टर : (**मज़ाक के मूड को कायम रखते हुए**) लो भई, हम तो ये भूल ही गए थे कि अब शैलेन्द्र को कुछ न कह सकेंगे। अब उसकी हिमायत करने के लिए हमारी बिटिया उसकी तरफ चली गई है। (**कहकहा लगाता है**)

श्याम : लेकिन डाक्टर, ज़रा यह तो ग़ौर कीजिए कि हिमायत शैलेन्द्र की भी की गई और आपकी भी। लेकिन जब हमारा मुँह काला करने की बात चली थी तो भाभी सिर्फ़ मुसकरा कर रह गई थीं।

इला : (**तनिक बौखला कर**) देखिये आप तो...आप तो...मैं तो सब के लिये कह रही थी। मैं...देखिये मैं ...(**बड़े प्यारे ढंग से हार मानकर**) मुझे बात करना नहीं आता। मुझे माफ़ ..

श्याम : हैं, हैं, यह क्या भाभी।

डाक्टर : (**बड़े स्निग्ध स्वर में**) अरे हम सबने मिल कर अपनी बिटिया को बौखला दिया है। नहीं नहीं, हमारी बिटिया बहुत अच्छी है, बहुत ही अच्छी। कुसुम, तुम तो बड़ी हो न। हमारी बिटिया को आशीर्वाद दो और चलो।

कुसुम : (**शरारत से**) डाक्टर हम सबके सामने आशीर्वाद नहीं देते। हमने इन्हें अलग लेजाकर पहले ही आदेश और आशीर्वाद दोनों दे दिये हैं।

डाक्टर : (**क़हक़हा लगाकर**) हो हो, भई बुढ़ापे की वजह से कूढ़ मग़ज़ हो गया हूँ। इतनी सी बात भी समझ में न आई।

(इला से) अच्छा अब चलता हूँ। अब से तुम्हारे आसरे हूँ। सुबह का नाश्ता तुम्हारे ज़िम्मे है।

इला : वाह, क्यों नहीं। मैं तो आपकी...

डाक्टर : बस बस और आगे न कहो। शैलेन्द्र का हक ज्यादा नहीं छीनूँगा। अच्छा भई आओ।

श्याम : अच्छा भाभी साहिबा, इजाज़त दीजिए।

इला : कल तो ज़रूर आइयेगा न ?

श्याम : यह कहने की ज़रूरत न होगी भाभी। हाँ जब मुझ से बोर हो जाया करें तो बता ज़रूर दें।

शैलेन्द्र : **(चिढ़ कर)** अबे अब जाएगा भी कि नहीं। इतना ग़ैरतमन्द होता तो घर में क्या, इस दुनिया में भी नज़र न आता। कभी का तीसरी मंजिल से छलाँग लगा चुका होता।

डाक्टर : अरे यह क्या। अब दोस्तों की फ़िक़रेबाज़ी का दूसरा दौर शुरू होने लगा ? लेकिन अब मैं अपर्ना बिटिया के हितों का यूँ हनन नहीं होने दूँगा। इसलिए मैं आदेश देता हूँ कि सब विदा लें।

कुसुम : अच्छा तो लीजिये, नमस्ते।

इला और शैलेन्द्र : नमस्ते।

श्याम : गुड नाइट भाभी जी।

इला : गुड नाइट।

[श्याम और कुसुम चले जाते हैं। डाक्टर भी जाने के लिए आगे बढ़ते हैं। इला उनको छोड़ने के लिए आगे बढ़ती है।]

डाक्टर : नहीं, नहीं अब तुम अन्दर जाओ। बाहर बड़ी सर्द हवा चल रही है। मेरे साथ तकल्लुफ की ज़रूरत नहीं। जाओ, खुश रहो।

[डाक्टर चले जाते हैं]

इला : डाक्टर कितने अच्छे हैं।

शैलेन्द्र : **(रूखे स्वर में)** हूँ।

इला : **(उसके स्वर के रूखेपन का ध्यान किए बिना उमंग के स्वर में)** मालूम है कुसुम ने मुझे अलग लेजाकर क्या कहा था ?

शैलेन्द्र : **(सख्ती से)** नहीं।

इला : बताऊँ ?

शैलेन्द्र : **(और सख्ती से)** मुझे जानने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं जानता हूँ औरतों की बातों में वासना की लालसा के सिवाय और कुछ नहीं होता।

इला : **(अप्रतिभ होकर)** आप···आप नाराज़ हो गए ?

[**शैलेन्द्र कोई उत्तर नहीं देता**]

इला : इधर देखिए। क्या मुझसे कोई ग़लती हो गई है ? अगर ऐसा हुआ है तो मैं क्षमा मांगती हूँ। मुझे क्षमा कर दीजिए।

शैलेन्द्र : **(उसी कठोरता से)** तुम्हें क्षमा माँगने की कोई ज़रूरत नहीं है।

इला : देखिए। मैं बहुत नादान हूँ। मुझ से अनजाने में ग़लती हो ही जाती है। जिस तरह आपने मेरी लाज रखकर और मुझे अपने चरणों में स्थान देकर इतना बड़ा अहसान किया है···

शैलेन्द्र : **(कटुता से)** अहसान ? मैंने तुम पर कोई अहसान नहीं किया। मैंने सिर्फ़ क़ीमत चुकाई है।

इला : आप क्या कर रहे हैं ?

शैलेन्द्र : यही कि मैंने तुम पर अहसान नहीं किया, बल्कि तुम्हारे बहलावे में आकर तुम्हारे शरीर से प्यार करने की क़ीमत चुकाई है। और वह भी इसलिये कि तुमने मुझ से क़ीमत माँगने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इला : **(आहत होकर)** आप,···आप विवाह करने को प्यार की क़ीमत वसूल करना कहते हैं ? क्या प्यार कोई सौदा होता है ?

शैलेन्द्र : हाँ, और एक ऐसा सौदा जो सौदा ही नहीं, बल्कि वह दाना भी होता है, जो जाल में फाँसने के लिए मर्द के आगे डाला जाता है।

इला : ओह, आपका मन विद्रोह से इस हद तक भर गया है ?

शैलेन्द्र : विद्रोह से नहीं, नफ़रत से। याद रखो, तुमने मुझ से प्रेम किया। अपनी मूर्खता या कमज़ोरी के एक क्षण में मैंने तुम्हारे इस प्रेम का उत्तर दिया और तुमने मेरे इस उत्तर को एक रुक्क़ा, एक दस्तावेज़, एक प्रोनोट बनाकर अपने पास रख लिया और कुछ अर्से बाद इसकी क़ीमत शादी के रूप में माँगी। तुम से शादी करके मैंने क़ीमत अदा कर दी है। अब मुझ से और किसी चीज़ की आशा न रखो।

इला : **(करुण स्वर में)** आप अब तक इसी तरह सोचते हैं ? आप अपने पवित्र प्यार को मूर्खता या कमज़ोरी का परिणाम समझते हैं ?

शैलेन्द्र : हाँ, मूर्खता और कमज़ोरी ही का नहीं, अपनी नातजुर्बेकारी, अपने नौसिखियेपन का भी, जिसका पूरा और अनुचित लाभ तुमने उठाया।

इला : **(आहत होकर)**आप इतने कठोर-हृदय कैसे हो गए ? आपको याद नहीं आता कि आप मुझको कितना प्यार करते थे। आपने मुझे कितनी प्यार भरी कविताएँ ला-लाकर सुनाई थीं। आपने कितने चाव से मेरे अनेक चित्र बनाए थे। और आपके वे प्यार भरे पत्र······

शैलेन्द्र : बस-बस, मुझे उन पत्रों की याद न दिलाओ, जो मेरे मानसिक पतन के घिनौने चिह्न हैं। मैं उनका ज़िक्र भी सुनना नहीं चाहता।

इला : **(अपार दुख से)** वे आपके मानसिक पतन के चिह्न हैं ?

शैलेन्द्र : हाँ ! उनकी याद आने पर मैं अपने से घृणा करने लगता

हूँ। इन पत्रों में मैंने जो कुछ लिखा, झूठ था, बकवास था। तुम अपने ख़तों में प्रेम से शराबोर शायराना फ़िक़रे लिखती थीं। अपनी कल्पना और क़ाबलियत दर्शाती थीं। इस मुक़ाबले में मैं भी तुमसे पीछे न रहना चाहता था। इस तरह जो कुछ मैंने उन पत्रों में लिखा, वह केवल तुम्हारे फ़िक़रों का साहित्यिक जवाब था। केवल यह दिखाने के लिए था कि मैं भी तुमसे अच्छे, खूबसूरत और रंगीन फ़िक़रे लिख सकता हूँ।

इला : **(कानों पर हथेलियाँ रखकर)** ओह, भगवान् के लिए ऐसी बातें न कीजिये। यूँ मेरा दिल न तोड़िये।

शैलेन्द्र : **(प्रतिशोध के स्वर में)** गोया तुमने मेरे दिल की बहुत परवाह की है? तुमने अपनी खुशी की ख़ातिर मेरी खुशी ख़त्म कर दी। अपनी ज़िद से मेरी ज़िन्दगी में ज़हर घोल दिया। तुम परले दर्जे की ख़ुदगर्ज़ और दुकानदार औरत हो।

इला : **(बड़े दुखी स्वर में)** मैंने आपकी खुशी ख़त्म कर दी? मैं ज़िद्दी हूँ? मैं ख़ुदगर्ज़ हूँ? आपके जो जी में आये कह डालिये। मैं तो बस इतना जानती हूँ कि मैं आप से प्रेम करने लगी। आपने भी मेरे प्रेम को स्वीकार किया। आप मेरे रोम-रोम में बस गये। इसके बाद सिवा आपके, मैं किसी की नहीं हो सकती थी। यह मेरी खुशी का नहीं, मेरे धर्म का, मेरे प्यार का, मेरी आत्मा का आग्रह था। इसलिए मैंने आपके वास्ते इन्तज़ार करना मंज़ूर किया। आपकी ज़हर भरी बातें सुनीं। माता-पिता के क्रोध और लांछनों को सहा। मैं आप को कैसे बताऊँ कि औरत का दिल सराय नहीं होता।

शैलेन्द्र : बस-बस रहने दो। यह मत समझो कि मैंने औरतों को देखा नहीं है। मैं खूब जानता हूँ कि वे क्या होती हैं और उनका दिल क्या होता है। लेकिन तुमने जो चाहा, वह तुम्हें मिल

गया। अब मैं जीवन भर के लिए तुम्हारे हाथों बिक गया हूँ। पर मुझसे अब किसी रहम, किसी प्यार की उम्मीद न रखो।

इला : तुम्हारा यह सब कुछ कहना मेरे लिए ख़ुशी की बात नहीं है शैलेन्द्र। लेकिन मैं पहले भी दिल से मजबूर थी, और अब भी मजबूर हूँ। अगर मेरा प्यार तुम्हारी जहर भरी बातों से मर सकता तो कभी का मर गया होता। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती थी और रहूँगी। तुमने मुझे अपनी बनाकर संसार के सामने लज्जित और तिरस्कृत होने से बचा लिया है। अब जो सज़ा भी तुम दोगे, मैं ख़ामोशी से, ख़ुशी से, बिना उफ़ किये सह लूँगी।

शैलेन्द्र : **(चिल्लाकर)** बस, बस, छल और ढोंग का यह खेल अब बन्द करो।

इला : **(सहमकर)** भगवान् के लिए धीरे बोलिये। डाक्टर ऊपर ही हैं। वे सुन लेंगे।

शैलेन्द्र : **(बड़ी क्रूरता से)** वे सुन लें, यही तो मैं चाहता हूँ। अब तक वे और सब यही सोचते हैं कि मेरा और तुम्हारा प्रेम-विवाह है। मैं भी तुमसे विवाह करने के लिए उतना ही आतुर था जितनी कि तुम। लेकिन अब मैं सबको असलियत से आगाह कर देना चाहता हूँ। मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि मैंने प्यार नहीं किया, प्यार की क़ीमत अदा की है।

इला : आप बार-बार इस फ़िकरे को दुहराकर मुझे क्यों तकलीफ़ पहुँचाते हैं? अगर आप यही सोचते हैं कि मैंने ज़्यादती की है, ख़ुदग़र्ज़ी से काम लिया है, तो मुझे घर में सजा दे लीजिए। दूसरों के सामने तो बेइज़्ज़त न कीजिए।

शैलेन्द्र : **(बड़ी क्रूरता से)** लेकिन तुमने क्या किया था? तुमने भी तो कहा था कि अगर मैं शादी नहीं करूँगा तो तुम मुझे बद-

नाम करोगी। अगर कहीं और शादी करूँगा तो मेरे ख़त दिखाकर शादी रुकवा दोगी। क्या तुमने मुझे दूसरों की नज़रों में गिराने की धमकी नहीं दी थी ?

इला : आप इसे धमकी कहते हैं ?

शैलेन्द्र : तो और क्या इसे दुलार कहूँ ?

इला : **(पूर्ण आत्म विश्वास से)** हाँ, आप न कहें, पर मैं इसे दुलार और प्यार ही कहूँगी। आपने शायद मुझे प्यार नहीं किया। इसलिए मुझसे दूर होने की बात पर आपके अन्दर कुछ नहीं हुआ। परन्तु आपसे बिछुड़ने की बात पर मेरी आत्मा ने अपना सिर फोड़-फोड़ लिया था। भय, लाज, संकोच और संयम सब त्यागकर उसने मुझसे कहा था, इनको पा ले ; इनसे अलग होकर तू दुखी ही न रहेगी, तू एक पतिता बन जाएगी। अपने प्यार को पाप बनने से बचाने के लिए मैंने वह सब कुछ किया और कहा।

शैलेन्द्र : तो बस, तुमने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। अब मेरी जान क्यों खाती हो ?

इला : मैं आपकी जान खाती हूँ, आप ऐसा समझते हैं ? लेकिन अब मैं आपसे कुछ नहीं कहूँगी। मुझे आपसे अब कोई शिकायत, कोई गिला न होगा। चार जनों के सामने आपने मेरा हाथ थाम लिया है। अब अगर बीच मंझधार में डुबो भी देंगे तो मैं आपकी आभारी रहूँगी।

[रोती हुई अन्दर चली जाती है।]

दूसरा दृश्य

[**वही कमरा। डाक्टर नाश्ता करने बैठे हैं। इला खड़ी है।**]

डाक्टर : अरे बिटिया—इतनी जल्दी नाश्ता तैयार कर डाला ? इस बूढ़े के लिए नाश्ता तैयार करने की फ़िक्र में रात भर सो भी सकीं, कि जाग-जागकर घड़ी देखती रहीं ? और वह शैलेन्द्र कहाँ गया ?

इला : स्टूडियो में चले गये हैं, कोई नई तसवीर बनानी है।

डाक्टर : भई बहुत खूब। तो यह कहो कि हमारे आर्टिस्ट के हक़ में हमारी बिटिया बड़े इंस्पिरेशन की चीज़ साबित हुई है।

इला : (**बात टालने की गर्ज़ से**) नहीं, यह बात नहीं है। उनकी एक तसवीर अधूरी थी। उसे पूरा करने······

डाक्टर : (**विनोद करते हुए**) और मैं भी तो यही कह रहा हूँ कि वह और उसका आर्ट, हमारी बिटिया के बग़ैर अधूरा था। अब पूरा हो गया है। क्यों ? (**बड़े स्नेह से हँसते हैं**) अच्छा अब नाश्ते के लिए तो बुला लाओ उसे।

इला : उन्होंने अपना नाश्ता वहीं ले लिया है।

डाक्टर : (**चौंककर**) क्यों और तुम······

इला : मैं आपके साथ करूँगी।

डाक्टर : (**गम्भीर होकर**) नहीं भई। यह हमें अच्छा नहीं लगा। जब तक तुम दोनों हमारे सामने नहीं बैठा करोगे, हम कुछ नहीं खाया करेंगे। (**खड़ा होने लगता है**)

इला : (**भयभीत सी होकर**) आप खड़े न होइये, बैठिये। मैं उन्हें बुला लाती हूँ।

डाक्टर : हाँ, हम तभी शुरू करेंगे। (**अपनी ऐनक उतार कर बड़ी भावना से**) इला, तुम नहीं जानतीं कि यह मेरी कितनी पुरानी चाह है। कितनी साध से यह मकान बनवाया था।

पर मकान बनवाने के एक महीना बाद ही मैं अकेला रह गया। इस घर की हँसी-खुशी एक दम लोप हो गई। तब से लेकर आज तक यह मकान सूना और ख़ामोश पड़ा रहा। मैंने शैलेन्द्र को यहाँ रखा था कि इसकी और तुम्हारी हँसी से ये सुनसान कमरे एक दिन गूँज उठेंगे। किसी हँसते हुए बच्चे की किलकारी इसके सुनसान सन्नाटों को सदा के लिए समाप्त कर देगी। बाहर से आने पर मुझे प्यार और खुशी से लौ देते हुए खूबसूरत चेहरे दिखाई देंगे। इस बूढ़े के इन सपनों को तुम्हें साकार करना होगा मेरी बच्ची।

इला : **(भावावेश में)** पिताजी! **(डाक्टर की छाती पर अपना सिर टेक देती है।)**

डाक्टर : **(उसका कन्धा पैत्रिक स्नेह से थपथपाते हुए)** मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि अपना सब कुछ खोकर भी इतने बड़े, इतने प्यारे, इतने क़ाबिल बच्चे पा लिए। **(सहसा प्रसंग की गंभीरता समाप्त करते हुए)** लेकिन अब तुरन्त जाओ और उस शैतान को बुला लाओ। न आए तो कहना, एक बूढ़ा भूखा बैठा है और बूढ़ों से बच्चों की तरह, भूख ज़्यादा देर तक बर्दाश्त नहीं होती।

इला : अभी लाती हूँ उन्हें।

[इला जाने के लिए मुड़ती है कि शैलेन्द्र अन्दर आता है।]

शैलेन्द्र : **(बड़े गंभीर लहजे में)** गुड मार्निंग डाक्टर।

डाक्टर : गुड मार्निंग का जवाब मैं पीछे दूँगा। पहले यह बताओ कि यह क्या हरकत है?

शैलेन्द्र : क्या?

डाक्टर : यही कि शादी के दूसरे ही दिन से जनाब स्टूडियों में जा घुसे। अकेले नाश्ता कर लिया। और हमारी बिटिया को इस खुश्क

बूढ़े खूसट के साथ नाश्ता करने को छोड़ दिया ?

शैलेन्द्र : (**बड़ी कटु गंभीरता से**) मैंने नाश्ता नहीं किया। वहीं रखा है।

इला : (**चौंककर**) क्या ? क्या आपने नाश्ता नहीं किया ?

डाक्टर : (**कुछ कुछ समझ कर**) हूँ, हूँ। देखो शैलेन्द्र। आज से तुम हमारे साथ नाश्ता किया करोगे और हमारे साथ ही खाना खाओगे। समझे ? यह हमारा हुक्म है।

शैलेन्द्र : (**दबे स्वर में**) बहुत बेहतर डाक्टर।

इला : आप बैठिये। मैं ताज़ी चाय बनाती हूँ।

[**शैलेन्द्र बैठ जाता है। इला चाय बनाती है।**]

डाक्टर : अरे हाँ, रात भर जिस बात को सोचता रहा था, सुबह यहाँ आते ही भूल गया। अब याद आई है।

शैलेन्द्र : (**अपना मूड बदल कर**) तो ज़रूर बताइये, वरना फिलासफ़रों की याद पर बिल्कुल भरोसा नहीं किया जा सकता। न जाने कब फिर आॅफ़ हो जाए।

डाक्टर : हाँ, यह तुमने बिल्कुल ठीक कहा। देखो, रात हमने एक प्रोग्राम बनाया।

शैलेन्द्र : (**चौंक कर**) आपने ? और प्रोग्राम ?

डाक्टर : हाँ, और वह यह कि तुम दोनों की शादी की खुशी में हम आज शाम को तुम्हें सिनेमा ले जाएँगे।

शैलेन्द्र : (**जैसे ऊपर से गिर कर**) आप ? डाक्टर आप सिनेमा देखेंगे ?

इला : (**अबोध स्वर में**) क्या आप सिनेमा नहीं देखते ?

डाक्टर : (**गहरी साँस लेकर**) देखता था। लेकिन पूर्णिमा के लोप हो जाने के बाद जो कुछ छोड़ दिया, सिनेमा भी उनमें से एक है। लेकिन आज मैं तुम्हें लेकर सिनेमा जाऊँगा।

शैलेन्द्र : (**विस्मय और आल्हाद से**) डाक्टर ! पन्द्रह वर्ष बाद···

डाक्टर : हाँ पन्द्रह वर्ष बाद, क्योंकि पन्द्रह वर्ष बाद ही इस घर

की हँसी और ख़ुशी एक नये स्वर और एक नये साँचे में ढल कर लौट आई है।

इला : **(उनके पास जाकर)** पिताजी !

डाक्टर : **(पीठ थपथपाते हुए)** मेरी बच्ची ! ज़िन्दगी बहुत कम रहम खाती है। एक बार जो ले जाती है, बहुत कम बार उसे लौटाने आती है। मैं तो यही समझता था कि अब जीवन ऐसे ही बीतेगा—बिना आस, बिन चिराग़। लेकिन उसने मेरी बेल में फिर फूल खिला दिये, मेरे आंगन में फिर चिराग़ जला दिए। मैं उन फूलों और चिराग़ों से अब अपना सारा जीवन सजाऊँगा। **(घड़ी की टन टन सुनाई देती है)** अरे, साढ़े नौ बज गए और मैं बहके जा रहा हूँ। बिटिया, तुम मुझे टोक दिया करो, वरना मैं बुरी तरह बहकने पर आ जाता हूँ।

शैलेन्द्र : लेकिन आपका बहकना, होश से ज़्यादा खूबसूरत होता है डाक्टर।

डाक्टर : लेकिन बहकना फिर भी अच्छा नहीं होता शैलेन्द्र। जिन्दगी खुद किसी बहके हुए का ख़्वाब है। इसमें जितना संभल कर, जितना आगा पीछा देखकर चला जाए, उतना ही अच्छा है।

[इसी समय डाक्टर का नौकर ऊपर से आता है।]

नौकर : साहब !

इला : क्या है राम ?

नौकर : बीबी जी, साहब से मिलने कोई आए हैं। अंग्रेज हैं।

डाक्टर : **(चौंक कर)** अरे, डाक्टर हडसन। मैं तो भूल गया कि उन्हें बुलाया था। बिटिया, मैं ऊपर जाता हूँ। तुम मेरा और उनका नाश्ता अब ऊपर ही भेज देना। क्या करूँ। मेरा यह दिमाग़···

इला : **(बड़े स्नेह से)** कोई बात नहीं। आप ऊपर जाइये। मैं नाश्ता भिजवाती हूँ। रामू तुम मेरे साथ अन्दर आओ।

नौकर : बहुत अच्छा बीबी जी ।

[**इला और नौकर अन्दर जाते हैं। डाक्टर बाहर जाता है। श्याम अन्दर आता है।**]

श्याम : आर्टिस्ट साहब, मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

शैलेन्द्र : ओह आप हैं बेहया साहब। कहिये, रात को तो दस बजे जान छोड़ी, अब किस लिए जान खाने तशरीफ लाए हैं ?

श्याम : यह देखने के लिए कि शादी से कौनसा रंग उतरा और कौन-सा चढ़ा है।

शैलेन्द्र : यह देखना चाहते हो ? तो जाइये अन्दर स्टूडियो में और उठाकर लाइये वह तसवीर, जो अभी पूरी करके आया हूँ।

श्याम : अभी पूरी करके ? क्या रात सोए नहीं ?

शैलेन्द्र : सोया था, पर तुम्हारी तरह नहीं। फ़ौरन जाग गया।

श्याम : यह क्या फिलासफ़ी है ?

शैलेन्द्र : अभी पता चल जाएगा। तसवीर उठा कर लाइये।

[**श्याम हैरान सा अन्दर जाता है और एक तसवीर लेकर आता है।**]

श्याम : यार यह किसकी तसवीर है ?

शैलेन्द्र : औरत की।

श्याम : (**हैरानी से**) औरत की ? यह औरत की तसवीर है ?

शैलेन्द्र : क्यों ?

श्याम : (**सिहर कर**) शैलेन्द्र, तुम्हें क्या होता जा रहा है ? औरत को तुम अब किस रूप में पेश करने लगे हो ?

शैलेन्द्र : (**स्पष्ट वैमनस्य भाव से**) उसके असली रूप में।

श्याम : और अपनी पुरानी तसवीरों में औरत का जो सुन्दर, स्निग्ध और पवित्र रूप चित्रित किया था, वह क्या था ?

शैलेन्द्र : झूठ, धोखा या फिर अनुभवहीनता।

श्याम : शैलेन्द्र ! पिछले एक साल से देखता चला आ रहा हूँ कि

तुम्हारे अन्दर औरत के प्रति घृणा और नफ़रत का भाव प्रचण्ड से प्रचण्डतर होता जा रहा है और उसकी काली क्रूर छाप तुम्हारे आर्ट और तुम्हारे व्यवहार, दोनों को विकृत करती जा रही है। तुम औरत को बहुत हीन, कुरूप और क्षुद्र समझने लगे हो।

शैलेन्द्र : तुमने ग़लत कहा। मैं औरत को बहुत शक्तिशाली, बहुत विषैली, बहुत घातक चीज़ समझता हूँ।

श्याम : लेकिन इससे तुम्हारी नफ़रत ही ज़ाहिर होती है।

शैलेन्द्र : और मेरा मक़सद भी यही है। श्याम, बात यह है कि पहले मैंने औरत को नहीं देखा था, उसकी ख़ूबसूरत तसवीरें देखी थीं। इसके बारे में ख़ूबसूरत कहानियाँ और कविताएँ पढ़ी थीं। लेकिन जिस दिन मैंने खुद औरत को देखा, मेरा दृष्टिकोण तुरन्त पूरी तरह बदल गया।

श्याम : शैलेन्द्र, तुम यह क्या कह रहे हो? तुम्हारी कल ही शादी हुई है और आज···

शैलेन्द्र : हाँ और आज मैं यह बातें कह रहा हूँ। श्याम, मर्द और औरत दो अलग-अलग इकाइयाँ हैं। शादी होने पर भी ये एक नहीं हो जातीं। इनमें खींचातानी बराबर बनी रहती है। हाँ, औरत के शरीर की चरबी आदमी की आँखों पर कुछ इस हद तक छा जाती है कि वह महसूस नहीं कर पाता कि कोई चिमगादड़ उसके पैर पर आ बैठा है और उसके अंगूठे से नामालूम तौर पर उसका खून चूस रहा है।

श्याम : (**काँप कर**) शैलेन्द्र! तुम यह कैसी भयानक बातें कर रहे हो?

शैलेन्द्र : ये भयानक बातें नहीं हैं। यह भयानक सच्चाई है। श्याम, तुम इस परम्परागत पाखंड में खोए हुए हो कि औरत त्याग और सेवा की मूर्ति है; प्यार की देवी है। लेकिन मैंने इस पाखंड के पर्दे के पीछे झाँककर देखा है और यही पाया है

कि औरत भी एक जानवर है जो दूसरे जानवरों की तरह अपने स्वार्थ और अपने ऐशोआराम की ख़ातिर ही आदमी से चिपटता है।

श्याम : (**तीव्र विरोध के स्वर में**) नहीं, नहीं। तुम औरत को उसकी भावना से अलग करके मुझे दिखा रहे हो। औरत के लिए मर्द में शरीर ही का नहीं, भावनाओं का भी आकर्षण होता है। बल्कि मैं तो दोनों को आकर्षण के दो ध्रुव मानता हूँ जो एक दूसरे के पूरक हैं।

शैलेन्द्र : बिल्कुल ग़लत। औरत के लिए मर्द में बस इतना आकर्षण होता है, जितना फ़ायदे के सौदे में एक चालाक व्यापारी को।

श्याम : शैलेन्द्र ! तुमको क्या हो गया है ? तुम प्यार को सौदा कहते हो ?

शैलेन्द्र : (**एक भयानक विश्वास के साथ**) हाँ। औरत के लिए मर्द एक सौदा है, जिस से उसे हर तरह का आराम और ऐश हासिल होता है। जिसे तुम औरत की सेवा और उसका त्याग कहते हो, वह इस सौदे से ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा उठाने के उसके तरीक़े और चालें हैं। अगर आदमी औरत का आप गुलाम बन जाए, उसे हर तरह का ऐशोआराम पहुँचाए, तो औरत एक ऐयार आक़ा की तरह अपनी मुस्कराहट के टुकड़ों और शरीर के छीछड़ों से आदमी को और ज़्यादा गुलामी करने के लिए बढ़ावा देती है। लेकिन अगर मर्द खुद उसका गुलाम न बने, औरत को इस सौदे से मन-चाहा फ़ायदा न हो तो फिर वह अपने दूसरे हथियार इस्तेमाल करती है। क्रोध, प्रपंच, घृणा और बेवफाई, इसके वे ओछे हथियार होते हैं, जिनसे काम लेने में उसे कभी झिझक नहीं होती।

श्याम : (**ज़ोर से**) नहीं, शैलेन्द्र तुम बहुत ज़्यादा बेइन्साफी और

ज़्यादती कर रहे हो। यह बहुत हद तक ग़लत है। इसका वास्तविकता से कोई वास्ता नहीं।

शैलेन्द्र : श्याम, रोना यही है कि अक्सर लोग जिसें वास्तविकता समझते हैं, वह वास्तविकता नहीं, उनकी अपनी कम-अक्ली की सीमा होती है। लेकिन तुम कम-अज़-कम कम-अक्ल तो नहीं हो। क्या तुमने नहीं देखा कि औरतें जो अपनी मुहब्बत के पहले दौर में अपने प्रेमियों पर जान छिड़कती हैं, उनके साथ भूखी-प्यासी रहने के दावे करती हैं, शादी के दूसरे महीने ही अपने भाग फोड़ने लगती हैं? आदमी की सूरत देख कर माथे पर सलवटों के जाल डाल लेती हैं—? और केवल इसलिए कि वे ज्यादा से ज़्यादा दौलत न कमा सके; अपना गला घोंट कर उनके लिए ऐशोआराम के साधन न जुटा सके।

श्याम : मैंने तो ऐसी कोई औरत नहीं देखी।

शैलेन्द्र : मनमोहन की बीवी भी नहीं देखी?

श्याम : (**हतबुद्धि होकर**) मनमोहन की बीवी?

शैलेन्द्र : जी हाँ। मनमोहन तुम से ज़्यादा काबिल, खूबसूरत और नेक है न?

श्याम : हाँ।

शैलेन्द्र : लेकिन क्या उसकी बीवी उसे उतना चाहती है जितना कि कुसुम तुमको? कुसुम तुम्हारा नाम आने पर तुम्हें कैसी प्यार भरी नज़रों से देखती है। लेकिन मनमोहन की बीवी—वह तुमसे मनमोहन की बुराई क्यों करती है? वह किस लिए कुसुम को अपने से ज़्यादा भाग्यशाली बताती है?

श्याम : मुझे नहीं मालूम।

शैलेन्द्र : तुम्हें मालूम है। तुम्हें मालूम है कि मनमोहन उतनी अच्छी नौकरी हासिल न कर सका जितनी कि तुम। वह अपनी बीवी को हर महीने साड़ियाँ लेकर देने के लिए तुम्हारी तरह यह

ग़वारा न कर सका कि उसके अपने सूट भले ही तार-तार हो जाएँ। वह अपनी बीवी को सौ-फ़ीसदी आराम देने के लिए तुम्हारी तरह यह फैसला न कर सका कि उसके बूढ़े माँ बाप गाँव में भले ही भूखे मर जाएँ।

श्याम : **(आवेश में)** शैलेन्द्र !

शैलेन्द्र : भड़कने की ज़रूरत नहीं दोस्त। तुम्हें याद तो होगा कि कुसुम के आने से पहले तुम्हारे पास दर्जनों सूट थे। तुम आर्ट की और लिट्रेचर की बातों में कितनी दिलचस्प लेते थे। बूढ़े माँ बाप और ग़रीब दोस्तों की कितनी मदद करते थे। लेकिन अब...अब तुम्हारे अपने सूट फटे हुए हैं। तुम मेरे पास आने के सिवा और कहीं नहीं आते जाते। दोस्त छोड़, अपने माँ बाप की भी एक पाई से मदद नहीं करते। तुम अब खुद कुछ नहीं कहते, सिर्फ अपनी बीवी की सुनते हो। यही वजह है कि तुम्हारी बीवी तुमसे मुहब्बत करती है और मनमोहन की बीवी मनमोहन से नफ़रत।

श्याम : **(तीव्र प्रतिवाद के स्वर में)** नहीं, नहीं, यह सरासत ग़लत है। मेरी बीवी मुझ से सिर्फ इसलिए प्यार नहीं करती।

शैलेन्द्र : ऐसा दावा है ? तो दो दिन तज्रुबा करके देख लो। दो दिन दफ्तर से देर से आओ ; नौकर हटा दो ; उसके साथ सिने-माओं और क्लबों की खाक न छानो ; अपना वक्त उसके साथ तीसरे दर्जे के मज़ाक करने और पड़ोसिनों की खुफ़िया दास्तानें सुनने में ख़राब न करो ; और एक महीने फिर अपने घर सौ रुपये भेजो। फिर देखना कुसुम में और मनमोहन की बीवी में और मेरी बनाई तस्वीर में क्या फ़र्क रह जाता है।

श्याम : **(विश्वास से)** शैलेन्द्र, कुसुम में, मोहन की बीवी में और तुम्हारी तसवीर में वही फ़र्क बना रहेगा, जो आज है। मैं तुम्हें दिखा दूंगा कि तुमने जो नतीजे निकाले हैं, वे ग़लत हैं ; जो तस-

वीर खींची है, वह वास्तविकता से दूर है। चीजें विकृत नहीं हैं, नज़र के शीशों में दोष है।

तीसरा दृश्य

[शैलेन्द्र सोफ़े पर लेटा एक मैगज़ीन पढ़ रहा है। इला साड़ी के पल्लू से हाथ पोंछती हुई अन्दर आती है।]

इला : खाना ले आऊँ ?

शैलेन्द्र : (**झुँझलाहट से**) क्या ? चिराग़ जले नहीं और तुम्हें खाने की सूझ गई।

इला : (**तनिक डर कर**) जी, आपने कहा था स्टेशन चलेंगे—उमा से मिलने। लौटते हुए बड़ी देर हो जाएगी।

शैलेन्द्र : लेकिन मैं स्टेशन नहीं जाऊँगा। मुझे तुम्हारी सहेली से मिलने का कोई शौक नहीं।

इला : लेकिन उसने हमें बुलाया है।

शैलेन्द्र : तुम अकेली जा सकती हो। मैं नहीं जाऊँगा।

इला : अकेली ? ज़रा सोचिये, उमा और उसके पति मुझे अकेली देखकर क्या सोचेंगे।

शैलेन्द्र : कुछ भी सोचें, मुझे परवाह नहीं।

इला : लेकिन इसमें मेरी तो बेइज़्ज़ती होगी।

शैलेन्द्र : (**भावना रहित स्वर में**) हुआ करे।

इला : देखिये, आप अकेले में मेरी जितनी बेइज़्ज़ती करना चाहें कर लें, लेकिन दूसरों की निगाह में तो मुझे न गिराएँ। कितनी बार मेरी गर्दन झुक-झुक गई है। मेरी कोई सहेली घर आती

है तो आप उठ कर बाहर चले जाते हैं। वह अपने यहाँ बुलाती हैं तो आप मुझे अकेली भेज देते हैं, आप नहीं जाते। बिना बुलाए मायके छोड़ आते हैं और फिर लेने के लिए नहीं जाते। मुझे इस तरह अपमानित करने से आपको क्या मिलेगा ?

शैलेन्द्र : एक आत्मिक शान्ति, एक दिली खुशी।

इला : (**व्यथा से**) मुझे दुख देकर, दुनिया के सामने गिरा कर आपको दिली खुशी मिलती है ?

शैलेन्द्र : (**बड़ी क्रूरता से**) हाँ। मुझे उस औरत से बदला लेकर सच-मुच खुशी होती है, जिसने मुझे शादी के लिए मजबूर करके मेरी खुशी ख़त्म कर दी। तुमने मेरे साथ क्या रिआयत बरती जो मैं रिआयत बरतूँ ? तुमने मेरे लिए क्या क़ुर्बानी दी, जो मैं तुम्हारी भावनाओं का ख्याल रखूँ ?

इला : देखिये, मैं आपसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि जो क़ुर्बानी आप मुझ से चाहते थे, वह मैं क्या, कोई औरत न दे सकती थी। आपसे विवाह करना मेरी भावनाओं ही का नहीं, मेरे चरित्र, मेरे आत्म-सम्मान की समस्या थी। दुनिया जान गयी थी कि मेरी आपकी शादी होगी। आपके वायदे के बल बूते पर मैंने सबसे कह दिया कि मैं आपकी हो चुकी हूँ। अगर आप से मेरी शादी न होती तो मैं बाजार की ऐसी चीज़ बन जाती जिसे पसन्द न आने पर वापिस किया जा सकता है, जिसे एक गाहक के छोड़ने पर दूसरे गाहक के आगे रखा जा सकता है। यह मेरे लिए मौत से भी अधिक असहनीय होता।

शैलेन्द्र : तो अब नतीजा भुगतो। अब शिकायत क्यों करती हो ?

इला : मैं शिकायत नहीं करती। आपने मुझे स्वीकार कर लिया, मेरे लिए यही बहुत है। लेकिन वह जो हमारे बीच आने वाला है······

शैलेन्द्र : (चौंक कर) कौन ? कौन आने वाला है (इला को ध्यान से देखता है) क्या···क्या तुम···

इला : हाँ (और यह कहते ही मुँह छिपा कर फ़र्श पर बैठ जाती है और फूट-फूट कर रोने लगती है)।

शैलेन्द्र : (एकदम पागल सा होकर) नहीं। यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता।

इला : (भयभीत होकर) क्या ?

शैलेन्द्र : तुम्हारा बच्चा। मुझे तुम्हारा बच्चा नहीं चाहिए।

इला : (तड़प कर) क्या ?···क्या···?

शैलेन्द्र : (पैशाचिक स्वर में) हाँ ! मुझे न तुम्हारी ज़रूरत थी न तुम्हारे बच्चे की है।

इला : (भय के स्वर में) नहीं, नहीं। ऐसा न कहिये।

शैलेन्द्र : मैं कहूँगा। मुझे तुम्हारा बच्चा नहीं चाहिए, क्योंकि वह बच्चा मेरी जीत की नहीं, मेरी हार की निशानी होगा। मुझे याद दिलाएगा कि मैं कमज़ोरी के क्षण में, एक औरत के शरीर के लोभ में, अपनी बुद्धि, अपना व्यक्तित्व, अपनी आत्मा अपना आत्मनिर्णय का अधिकार गँवा बैठा था।

इला : (याचना के स्वर में) शैलेन्द्र ! भगवान् के लिए यूँ न सोचो। अगर मुझे मालूम होता तुम मुझे चाहते नहीं हो, केवल कमज़ोरी के क्षण में डगमगा रहे हो तो मैं अपने को तुम्हारे हवाले कभी न करती। तुम्हारी भावनाओं के भंवर में अपनी नाव छोड़ने से पहले विवाह का वचन कभी न लेती। मुझे तुमसे प्यार था। मैं प्यार के बदले प्यार चाहती थी—उसे केवल विवाह के दाम पर बेचना नहीं चाहती थी। लेकिन अनजाने में जो अनर्थ होना था, हो चुका। अब आने वाले दिनों को तो बीते दिनों की कटुता की भेंट न चढ़ाओ।

शैलेन्द्र : (क्रूरता से) नहीं। जो आग तुमने मेरे जीवन में सुलगाई है,

उसमें अपने को भी जलाऊँगा, तुमको भी जलाऊँगा और इस तीसरे की भी जो आने वाला······

इला : **(याचना और भय के स्वर में)** नहीं, नहीं, ऐसी भयानक बातें न सोचिये। मैंने आपका बिगाड़ा है। लेकिन उस नन्हीं जान ने तो कुछ नहीं बिगाड़ा। और वह मेरा ही नहीं है। वह आपका भी तो है।

शैलेन्द्र : **(कठोरता से)** नहीं! मेरा अब कोई नहीं हो सकता। मैं अब किसी का नहीं हो सकता। तुमने मुझे ठग लिया। मैं भी तुम्हारी खुशी को ठगूँगा। तुम्हें दवा खा कर इस बच्चे को·······

इला : **(भयभीत होकर)** नहीं नहीं, यह नहीं होगा। मैं ऐसा नहीं करूँगी। कभी नहीं करूँगी।

शैलेन्द्र : **(क्रूरता से)** तुम्हें ऐसा करना होगा। मैं तुम्हें, तुम्हारे बच्चे का गला घोटने पर वैसे ही मजबूर करूँगा, जैसे तुमने मुझे मेरी खुशियों का गला घोटने पर मजबूर किया था।

इला : **(रोते हुए)** शैलेन्द्र! **(पाँव पर गिर जाती है)**

शैलेन्द्र : **(क्रूरता से पांव छुड़ाकर जाते हुए)** नहीं, तुमको दवा खानी होगी। तुम्हें अपनी खुशी का गला अपने हाथों घोटना होगा। मैं आज ही वह दवा ला कर दूँगा। **(चला जाता है)**

चौथा दृश्य

[श्याम के मकान का कमरा। श्याम सोफ़े पर अखबार पढ़ रहा है। कुसुम अन्दर से झुँझलाई सी आती है।]

कुसुम : यह आपने नौकर क्यों निकाल दिया ?

श्याम : **(अखबार पढ़ते-पढ़ते)** उसके लिए कोई काम नहीं था।

कुसुम : क्यों, घर में काम कैसे नहीं था ?

श्याम : **(अखबार सामने से हटा कर)** क्या काम था ?

कुसुम : वह झाड़ू देता था, कपड़े धोता था, खाना पकाता था।

श्याम : ये काम तो तुम भी कर सकती हो।

कुसुम : **(चौंक कर)** मैं ?

श्याम : हाँ। क्यों ?

कुसुम : **(बौखला कर)** लेकिन···लेकिन उस से और भी तो आराम थे।

श्याम : मसलन ?

कुसुम : मसलन···सब्जी ला दिया करता था···कोई मेहमान आ जाता था तो उसके लिए फल वग़ैरा ला देता था।

श्याम : इसकी तुम फ़िक्र न करो। सब्ज़ी भी मैं ला दिया करूँगा और मेहमान आयेगा तो बाज़ार भी मैं चला जाया करूँगा।

कुसुम : लेकिन···लेकिन मुझे तो बड़ी दिक़्क़त हो जाएगी।

श्याम : हाँ, यूँ कहो। **(सख्ती से)** लेकिन तुमको क्या दिक़्क़त हो जाएगी ? मेरी माँ अकेली थी, बीमार रहती थी और घर में २०-२२ आदमियों का कुनबा था। लेकिन वह सबके लिए खाना बनाती थी। सारे घर का काम करती थी। तुम तो जवान हो, तन्दुरुस्त भी हो। क्या तुम से मेरे लिए दो रोटियाँ भी नहीं डाली जाएंगी ?

कुसुम : मैं यह कब कह रही हूँ। लेकिन आख़िर अचानक ऐसी क्या ज़रूरत आन पड़ी कि अब नौकर न रखा जाए ?

श्याम : मैं फ़ुज़ूल पैसा ख़राब करना नहीं चाहूँगा।

कुसुम : यह तुम्हें क्या हो गया है ? पिछले दिनों से हर बात पर यही कह देते हो—मैं पैसा बरबाद करना नहीं चाहता। मैंने साड़ी

के लिए कहा तो यही जवाब मिला। दर्ज़ी के यहाँ ब्लाउज़ दे आने के लिये कहा तो कह दिया—घर में सीने की मशीन को जंग लग रहा है, वह किस काम आयेगी। रात सिनेमा जाने के लिए कहा तो कह दिया—अपनी माँ के यहाँ कितने सिनेमा देखती थीं।

श्याम : हाँ ठीक तो है।

कुसुम : **(मचल कर रोने की कोशिश करते हुए)** मैं सब जानती हूँ इन बातों का क्या मतलब है। तुम्हारा मुझ से जी भर गया है। तभी बात-बात पर मेरा दिल तोड़ते हो।

श्याम : बहुत ख़ूब। अगर तुम्हारा दिल इतना नाज़ुक है कि नौकर निकाल देने से, नई साड़ी न लाने से और आये दिन सिनेमा न जाने से टूट जाता है तो मेरी खाल की ख़ैर नहीं। तुम्हारा दिल सालिम रखने के लिये तो फिर एक दिन मुझे अपने को सरे बाज़ार बेचना पड़ेगा।

कुसुम : **(बिगड़ कर)** श्याम···!

श्याम : **(क्रूरता से)** क्या ?

कुसुम : तुम मुझ से झगड़ा करना चाहते हो ?

श्याम : गोया अगर मैं नौकर न रखूँ और तुम्हारा हर हुकम न मानूँ, तो तुम मुझ से झगड़ोगी ? लेकिन तुम तो कहा करती थी—मैं तुमसे कभी नहीं झगड़ूँगी। मैं दूसरी औरतों की तरह कपड़े लत्ते, ऐशोआराम की भूखी नहीं हूँ। तुम्हारे साथ रहकर भूख और प्यास भी सह लूँगी। लेकिन आज जब काया हिलाने और ऐशोआराम से महरूम होने का सवाल आया है तो रंग उड़ गया ? माथे पर बल पड़ गए ? जान निकल गई।

कुसुम : **(आँखें भर कर)** श्याम ! तुमको सचमुच कुछ हो गया है। तुम कैसी बातें करने लगे हो ?

श्याम : सच्ची, बेलाग और दो टूक। कुसुम, मैं बहुत दिन धोखे में रहा हूँ। मैं समझता था औरत का प्यार निःस्वार्थ होता है। वह अपने शरीर की सुविधा से, पति की सेवा को ज़्यादा बड़ा मानती है। वह सचमुच प्यार और त्याग की मूर्ति होती है। लेकिन यह धोखा था, फ़रेब था। जब तक मैं पालतू कुत्ते की तरह घर वक्त पर आता रहा, अपने लिये कपड़े न बनवा कर तुम्हारे लिये साड़ियाँ खरीदता रहा, बस में दफ्तर न जाकर धूप में साइकिल घसीटता रहा और तुम्हारे लिये नौकर ला ला कर देता रहा, तब तक तुम मुसकराती रहीं; मौहब्बत करती रहीं; दूसरों के सामने मुझ पर न्यौछावर होती रहीं। लेकिन जैसे ही बराबर की मेहनत करने और तंगी भुगतने का वक्त आया जान निकल गई ?...

[**शैलेन्द्र दाखिल होता है**]

शैलेन्द्र : अमाँ यह क्या हो रहा है ? आज इस घर में भाभी जी के बजाय यह दूसरी किसकी आवाज़ सुनाई दे रही है ?

श्याम : (**ज़ोर से**) मेरी।

शैलेन्द्र : हैं, हैं, खुदा खैर करे। आज तो आसमान पर दुलत्तियाँ झाड़ रहे हो। अरे भाभीजी, आप कैसी हो रही हैं ?

[**कुसुम उत्तर नहीं देती। पल्लू में मुँह छिपा कर रोने लगती है**]

श्याम : चूल्हा झोंकना और काम करना पड़ेगा, इसलिए शोक मना रही हैं।

शैलेन्द्र : अरे तुमने तो हमारी भाभी को नाराज़ कर दिया। भाभीजी क्या बात...

श्याम : (**क्रोध से**) देख बे, लल्लो चप्पो करके मिज़ाज मत बिगाड़। तुम्हीं लोगों ने तारीफ़ कर करके इसे आसमान पर चढ़ाया हुआ है।

[कुसुम रोती हुई अन्दर चली जाती है ।]

शैलेन्द्र : एक साथ उबाल खा गये बेटा ?

श्याम : उबाल नहीं खाया, आँखें खुल गई हैं । तू ठीक कहता था । औरतें वाक़ई मर्द को ग़ुलाम बना कर रखना चाहती हैं । इनके लिए आदमी बोझ ढोने वाला गधा है, जिसे बोझ ढोने पर प्यार की एक थपकी और न ढोने पर प्रपंच और त्रिया-चरित्र की एक पूरी कड़वी कसैली, खुराक मिलती है ।

शैलेन्द्र : प्यारे, अभी तो सवेरा हुआ है । सूरज चढ़ने दो । फिर देखना यह रूप का सूरज जिसे तुम प्यार और सेवा का स्वरूप समझते थे, क्या आग बरसाता है ? क्या लू के झक्कड़ चलाता है ?

श्याम : लेकिन यार, क्या सब औरतें ऐसी होती हैं ? क्या इला भी···

शैलेन्द्र : प्यारे जिनका पेशा एक होता है, वे सब एक जैसे होते हैं । बस टेकनीक का और ख़ून चूसने के तरीक़ों का फ़र्क़ होता है ।

श्याम : तू ठीक कहता है शैलेन्द्र । सूरतें क्या भोली होती हैं, बातों में क्या शायराना बहकावे होते हैं, आँखों में क्या रेशमी बुलावे होते हैं । लेकिन इन सब के पीछे···शैलेन्द्र अब तो औरत के भरे-भरे जिस्म और सुर्ख़ सुर्ख़ होठों को देखता हूँ तो रूमान के बजाए अपनी रगों का ख़ून याद आता है ।

शैलेन्द्र : वाह प्यारे । या तो आँखें ही न खोलते थे या अब पलक झपकाने को तैयार नहीं ।

श्याम : हाँ शैलेन्द्र ! चार साल तक नागिन के फन को चूमता रहा और न जान पाया कि इसके भीतर ज़हर की पोटली भी है । अब पोटली देखी है तो आँखें फटेंगी ही ।

शैलेन्द्र : फिर तो दुआएँ दो कि तुम्हें भी क़ातिल बना दिया ।

श्याम : हाँ दोस्त, कल तक यही समझता था तुम्हें रंगों की पहचान है ।

लेकिन आज पता चला कि ज़हर की भी पहचान रखते हो।

[सहसा अन्दर से नौकरानी भागी आती है।]

नौकरानी : (**भयभीत आवाज़ में**) बाबूजी, बाबूजी…

श्याम : (**सख़्ती से**) क्या है महरी ? क्यों चिल्ला रही है ?

नौकरानी : बाबूजी, बीबीजी ने ज़हर खा लिया।

शैलेन्द्र : (**चौंक कर**) ज़हर ?

श्याम : (**काँप कर**) क्या ?

नौकरानी : (**हाँपते हुए**) बाबूजी, उन्होंने ज़हर खा लिया। उनके मुँह से झाग निकल रहे हैं। उनके होंट नीले पड़ गए हैं।

श्याम : (**भावावेश से**) कुसुम (**अन्दर जाने के लिए भागता है, लेकिन उसी समय कुसुम, लड़खड़ाती अन्दर आती है। वह लड़खड़ा रही है।**)

श्याम : कुसुम ! तुमने यह क्या किया ? (**आगे बढ़कर उसे सम्भालता है**)

शैलेन्द्र : (**घबराये स्वर में**) तुम इन्हें सोफ़े पर लिटाओ। मैं पड़ोस वाले डाक्टर को बुलाकर लाता हूँ।

[बाहर दौड़ जाता है]

श्याम : (**रोकर**) तुमने यह क्या किया कुसुम ? बोलो, तुमने यह क्या किया !

कुसुम : (**टूटे स्वर में**) उस जीवन का अन्त, जो पति के प्यार से सूना हो गया। उस देह का अन्त………जिसे पति ने प्यार का नहीं……अपने खून का भूखा समझ लिया।

श्याम : (**रोकर**) कुसुम, मुझे माफ़ कर दो। मैं बहक गया था। मैं शिकार हो गया था उस ज़हर का, जो मुझ में नहीं था, तुम में नहीं था, उस आसतीन के साँप में था, जिसे शैलेन्द्र कहते हैं।

कुसुम : शैलेन्द्र ?

श्याम : हाँ कुसुम, उसने मुझे बहका दिया था। अपनी बातों का ज़हर

मुझ में भर दिया था। अपनी आँखों का काला विकृत चश्मा, उसने मेरी आँखों पर चढ़ा दिया था।

[**उसी समय शैलेन्द्र दाखिल होता है।**]

शैलेन्द्र : (**घबराए स्वर में**) श्याम, डाक्टर नहीं मिला। इन्हें अस्पताल ले चलो। मैं टैक्सी ले आया हूँ।

श्याम : (**खड़े होकर घृणा से भरपूर लहजे में**) मक्कार, कमीने, आसतीन के साँप ! पहले मुझ में ज़हर भर दिया, मेरी बीवी की जान लेने का बन्दोबस्त कर दिया, और अब टैक्सी लेकर आया है ? निकल जा मेरे मकान से। दूर हट जा मेरी निगाहों से।

शैलेन्द्र : (**विनय के स्वर में**) श्याम ! (**कुसुम हाथ उठा कर और श्याम का कुरता खींच कर चुप रहने को कहती है।**)

श्याम : नहीं। अब मैं इसकी सूरत देखना नहीं चाहता। चले जाओ यहाँ से ! (**कुसुम को उठाने के लिए झुकता है। शैलेन्द्र भी आगे बढ़ता है**) मैं कहता हूँ कुसुम को हाथ मत लगाओ। मैं ऐसे हत्यारे का इस पर साया भी पड़ने देना नहीं चाहता। महरी, तुम पकड़ो इधर से बीवीजी को। मैं खुद ले जाऊँगा इन्हें अस्पताल।

महरी : अच्छा बाबूजी।

[**श्याम और महरी कुसुम को थाम कर बाहर ले जाते हैं। टैक्सी चलने की आवाज आती है और शैलेन्द्र श्याम के कमरे में खड़ा रहता है—अकेला, एक ऐसे अपराधी की तरह जिसने अपने मित्र की पत्नी को जहर खाने पर मजबूर कर दिया। वह कुछ देर खड़ा रहता है कि डाक्टर आते हैं। परन्तु आज उनके चेहरे पर स्नेह नहीं है, एक जहरीले व्यंग की कठोरता है।**]

डाक्टर : शैलेन्द्र, मुबारिक हो।

शैलेन्द्र : (**खोए खोए**) हूँ। (**फिर चौंक कर**) क्या ?

डाक्टर : तुम्हारा बूढ़ा डाक्टर तुम्हें मुबारिकबाद देने आया है।

शैलेन्द्र : मुबारिकबाद ?

डाक्टर : हाँ ! आज तुम्हारी कामयाबी का दिन है। तुम अपने मिशन में कामयाब हुए हो ?

शैलेन्द्र : (**खोए खोए लहजे में**) क्या कह रहे हैं डाक्टर ?

डाक्टर : अभी-अभी कुसुम को अस्पताल जाते देखा है। श्याम से दो बातें ही हुई हैं। लेकिन इतना पता चल गया कि तुम अपने पहले तजुर्बे में सौ फी सदी कामयाब रहे।

शैलेन्द्र : (**हत-बुद्धि होकर**) पहले तजुर्बे में ? मैं समझा नहीं डाक्टर।

डाक्टर : ओह, इस कामयाबी को इतनी मामूली मानते हो कि समझे ही नहीं, ठीक भी है, तुमको तो इससे ज़्यादा शानदार कामयाबी का इन्तज़ार है।

शैलेन्द्र : आप क्या कह रहे हैं डाक्टर ? मेरी तबीयत ठीक नहीं है।

डाक्टर : क्यों ? क्या तुम खुश नहीं हो ? ओह, अभी अस्पताल से कुसुम की आख़री खबर जो नहीं आई ?

शैलेन्द्र : (**तिलमिला कर**) डाक्टर !

डाक्टर : लेकिन फ़िक्र न करो शैलेन्द्र। तजुर्बा जरूर कामयाब होगा। ख़बर ज़रूर आएगी। और हाँ, कामयाबी की एक और ख़बर सुनो, जो मैं लेकर आया हूँ। तुमको इला से मुक्ति मिल गई।

शैलेन्द्र : (**इतना चौंक कर कि उसका सारा शरीर काँप उठता है**) क्या ? क्या इला ने भी······

डाक्टर : मुझे खेद है शैलेन्द्र कि इला ने जहर तो नहीं खाया। हाँ, मैंने उसे, उसके होने वाले बच्चे समेत तुम्हारी ज़िन्दगी से उठा लिया है।

शैलेन्द्र : डाक्टर ! आप······आप क्या कह रहे हैं ?

डाक्टर : जो तुम इतने दिनों, अपनी बातों और अपने ब्रश के रंगों से

करना चाह रहे थे । शैलेन्द्र, तुम जानते हो मुझे तुम्हारे आर्ट से दिलचस्पी रही है—उस समय से जब से तुम अपने क़स्बे को छोड़ कर इस शहर में आए थे। मैंने लगभग हर उस कठिनाई को दूर करने की कोशिश की है जो तुम्हारे आर्ट के विकास के रास्ते में आई । मैंने तुम्हारे लिए हर वह सुविधा जुटाने का प्रयत्न किया है, जिस से तुम्हारी कला का फूल खिल सकता । इस बार भी मैंने वैसा ही किया है । मैंने उस साए को हटा दिया है, जो तुम पर और तुम्हारी कला पर अपनी काली छाया डाल रहा था ।

शैलेन्द्र : काली छाया ?

डाक्टर : हाँ । शैलेन्द्र । देखो तुम्हारा अपना रंग कितना काला हो गया है । तुम्हारी तसवीरों पर काले रंग कितने छा गए ? वह उस साए ही का असर तो है ।

शैलेन्द्र : किस साए का डाक्टर ?

डाक्टर : जिसने तुमको ब्लैकमेल किया । जिसने तुम्हारे अरमानों का गला घोंट कर तुम्हें अपने साथ शादी करने पर मजबूर किया । जिसने······

शैलेन्द्र : (**क्रोध से**) ओह ! तो इला ने······

डाक्टर : मुझको भी बता दिया । उसने तुमको मेरी निगाहों में गिराने की कोशिश की । उसने चाहा कि तुम अपनी खुशी और अपने आर्ट के साथ-साथ मुझ से भी महरूम हो जाओ । लेकिन मैंने उसकी चाल देख ली ।

शैलेन्द्र : (**न समझ कर कि डाक्टर उसकी हिमायत कर रहा है या इला की**) डाक्टर !

डाक्टर : हाँ, शैलेन्द्र । इला ने सचमुच तुमको ठग लिया । तुम इतने बड़े आर्टिस्ट हो । तुमको हक़ है कि तुम लड़कियों से उनके रूप, उनके शरीर और उनके प्यार का खिराज वसूल करो । उनको

क्या हक़ है कि वे उसका मूल्य माँग कर तुम्हें शादी के लिए मजबूर करें ? तुम कलाकार हो। दुनिया के प्राणियों का एकमात्र धर्म अपने धन, अपने तन और अपने मन की भेंट चढ़ाकर तुम्हें प्रेरणा देना है, पल्ले में बाँध कर अपने घर ले जाना नहीं।

शैलेन्द्र : (**और ज्यादा उलझ कर**) डाक्टर······

डाक्टर : हाँ शैलेन्द्र ! इला को तुम्हारी ज़िन्दगी में उसी समय तक रहना चाहिए था, जब तक तुम मशहूर न हुए थे, जब तक तुम्हारे गिर्द लड़कियों का झुण्ड इकट्ठा न हुआ था। जब ज़्यादा ख़ूबसूरत और ज़्यादा दौलतमन्द लड़कियाँ तुम्हारी ज़िन्दगी में आ गई थीं, तो उसे तुमको छोड़ कर चले जाना चाहिए था। तुमको दूसरी लड़कियों से इन्सप्रेशन लेने के लिए आज़ाद कर देना चाहिए था।

शैलेन्द्र : डाक्टर, आप······आप मुझे कन्डैम तो नहीं कर रहे ?

डाक्टर : क़तई नहीं मेरे बेटे। मैं एक बूढ़ा अहमक़, एक आर्टिस्ट को कन्डैम कर सकता हूँ ? मैं तो ख़ुद एक सीढ़ी हूँ, जिसका काम तुम्हारे पैरों को चूम कर तुम्हें ऊपर ले जाना था। इसलिए अब यदि मैं देखता हूँ कि मैं तुम्हें और ऊपर नहीं ले जा सकता तो सोचता हूँ मुझे भी अब तुम्हारी ज़िन्दगी से हट जाना चाहिए।

शैलेन्द्र : (**भयभीत होकर**) डाक्टर, आप क्या कह रहे हैं ?

डाक्टर : वही जो तुम्हारी ज़िन्दगी का सिद्धान्त है।

शैलेन्द्र : नहीं डाक्टर नहीं। आप मुझे नहीं छोड़ सकते।

डाक्टर : (**बड़ी कठोरता से**) क्यों नहीं छोड़ सकता ? क्या तुम समझते हो कि मेरा स्नेह उस इंसान पर लुटने के लिए है जो अपने को इस दुनिया का ख़ुदा समझ बैठा है ? क्या मेरा दुलार उस आदमी पर न्यौछावर होने के लिए है, जो भोली

भाली लड़कियों के कुमारत्व के रंग अपने व्यक्तित्व और अपनी तसवीरों में भर कर, उन्हें रंग की ख़ाली ट्यूबों की तरह एक ओर फेंक देना चाहता है ? क्या मैं ऐसे आदमी को सहारा दूँगा जो लड़कियों को वेश्या और माताओं को उनके अपूर्ण बालकों की हत्यारिणी बनाना चाहता है ?

शैलेन्द्र : (**क्षमा के स्वर में**) डाक्टर··· (**डाक्टर की तरफ बढ़ता है**)

डाक्टर : मेरे क़रीब तक न आओ। आज मुझे तुमसे रंगों की नहीं, ख़ून की बू आती है। तुम इला से—जिसे तुमने पत्नी माना, जिसे मैंने अपनी बेटी बनाया—इतना भयंकर खेल खेल रहे हो? तुम उससे और उसके बच्चे से इस बात का बदला चाह रहे हो कि उसने अपना कुमारत्व तुम्हें देकर किसी दूसरे आदमी की पत्नी बनना स्वीकार क्यों न किया ? मैं तुम जैसे नीच, चरित्रहीन, हत्यारे इन्सान की शक्ल तक देखना नहीं चाहता। चले जाओ मेरी आँखों के सामने से।

शैलेन्द्र : डाक्टर (**रोता हुआ डाक्टर के पैरों में गिर जाता है**) डाक्टर ! मुझे माफ़ कर दो। मुझे माफ़ कर दो। मैं बहक गया था।

डाक्टर : नहीं। (**पैर छुड़ाने के लिए हटता है**) अब तुम्हारा मुझ से कोई वास्ता नहीं। इला से कोई वास्ता नहीं। मैं उसे अपने पास रखूँगा। मैं उसका और उसके बच्चे का रखवाला बनूँगा। मैं देखूँगा तुम उसका, मेरा, किसी का क्या बिगाड़ते हो।

शैलेन्द्र : नहीं डाक्टर, मैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आप मुझे नहीं छोड़ सकते। आज मैंने अपने अन्दर उस साँप को देख लिया है जो मेरे अन्दर फन उठा कर खड़ा हो गया था। जिसने कुसुम की जान ले ली। जिसने इला और मेरे अपने बच्चे पर अपने दाँत लगाए थे। अब मैं उस साँप को कुचल

डालूँगा। मसल डालूँगा। **(उसी समय इला दौड़ी-दौड़ी अन्दर आती है)**

इला : डाक्टर, डाक्टर कुसुम ब···ब···ब···**(देख कर ठिठक जाती है)**।

शैलेन्द्र : **(हाँपते हुए)** इला, कुसुम का क्या हुआ ? क्या हुआ ?

इला : **(डाक्टर की ओर देखकर)** डाक्टर, वे बच गईं।

शैलेन्द्र : **(शान्ति की गहरी साँस लेकर)** ओह—मेरे हाथ से खून धुल गया। मैं अपने दोस्त की बीवी का हत्यारा बनने से बच गया। **(इला की ओर देख कर)** इला मुझे माफ़ कर दो। मुझे डाक्टर से माफ़ी दिला दो। इला······

[इला के पैरों की ओर झुकता है। लेकिन इला आगे बढ़ कर उसे बीच ही में रोक लेती है।]

इला : आप यह क्या करते हैं! डाक्टर **(डाक्टर की ओर उन निगाहों से देखती है जिनमें, शैलेन्द्र के लिए दया और क्षमा की भीख होती है)**

[शैलेन्द्र इला से हट कर घुटनों के बल बैठ जाता है डाक्टर का कोट पकड़ कर रो उठता है।]

शैलेन्द्र : डाक्टर, मुझे माफ़ कर दो, मुझे माफ़ कर दो। आपसे हट कर मैं नहीं जी सकता—नहीं जी सकता **(रो पड़ता है)**।

[डाक्टर का दिल पिघल जाता है। आँखें खुशी के आँसुओं से भर जाती हैं। झुक कर शैलेन्द्र को उठाता है और छाती से लगा लेता है]

डाक्टर : मेरे बच्चे, मेरे बच्चे। इला **(शैलेन्द्र को गोद में लिए लिए इला की ओर बढ़ता है और उसे भी अपनी दूसरी बाँह में लेकर आँसू सँभालने की कोशिश में ऊपर देखते हुए कहता है)** मेरे बच्चो, ज़िन्दगी में मुस्कराने के लिए बहुत कम रह गया है। लेकिन जो कुछ भी रह गया है, उसे अपनी नादानी से यूँ

न गँवाओ। मत सोचो कि मर्द ऐशोआराम पहुँचाने के लिए है। मत सोचो कि औरत त्याग और सेवा करने के लिए है। दोनों इन्सान हैं। दोनों को जीने के लिए आराम, इतमीनान और आत्म-सम्मान चाहिए। एक दूसरे से इतना न चाहो कि प्यार की खूबसूरती खत्म हो जाए, स्वार्थ की बदसूरती निकल आए। एक दूसरे को इतना दो कि जो नहीं है, वह हो जाए। जो है, वह बेल की तरह फल-फूल कर जीवन की मेहराब पर यूँ छा जाए कि दिखाई भी न दे, नीचे ईंट और पत्थर की एक खुरदरी, बदसूरत बदनुमा दीवार भी है।

[समाप्त]

पात्र

रंजन : एक भावुक नवयुवक जो एक झूठे इलज़ाम में नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया है।

कान्ता : उसकी पत्नी, जो एक बड़े घर की बेटी होने के नाते जीवन को ऐशोआराम के बाटों से तोलती है।

रमेश : रंजन का गहरा, वफ़ादार दोस्त।

माँ : रंजन की माँ।

पहला दृश्य

[बैठने का एक कमरा। कमरे में इस समय रंजन और उसकी माँ हैं]

रंजन : (संकोच भरे स्वर में) माँ।

माँ : क्या है बेटा ?

रंजन : माँ, तुम जो कर रही हो, अच्छा नहीं कर रही हो।

माँ : मैं क्या अच्छा नहीं कर रही हूँ भला ?

रंजन : यही, कि उन लोगों से छिपा रही हो, मेरी नौकरी छूट गई है।

माँ : पर कौन कहता है कि तेरी नौकरी छूट गई है ?

रंजन : नौकरी से मुअत्तल होना नौकरी छूट जाने के बराबर है। मेरी नौकरी खत्म समझो।

माँ : ऐसे ही खत्म समझूँ। आखिर तूने किया क्या है ? तूने तो रिश्वत नहीं ली। उन्होंने तुझ पर झूठा इलज़ाम लगाया है। जांच होगी तो आप सच का पता लग जाएगा।

रंजन : माँ, तुम इन बातों को समझ नहीं सकतीं। जिन लोगों ने मुझे नौकरी से हटवाने के लिए मुझ पर इलज़ाम लगाया है, वे इस इलज़ाम को सही भी साबित कर देंगे।

माँ : वैसे ही सही साबित कर देंगे ! झूठ भी सच हो सकता है ?

रंजन : माँ, झूठ इस दुनिया का सबसे बड़ा सच है। अगर झूठ में सच बन जाने की ताक़त न होती तो यह अब तक इस

दुनिया से कभी का मिट चुका होता।

माँ : तू तो पढ़ लिखकर नास्तिक हो गया है। तुझे सच्चाई और भगवान पर भरोसा नहीं रहा।

रंजन : माँ, अगर तुम भी इन पर भरोसा न रखो तो शायद चीज़ों को ज़्यादा सही ढंग से देख सकोगी।...लेकिन तुमने फिर मेरी बात टाल दी। मैं कहता हूँ उन लोगों को बता दो, मैं नौकरी से मुअत्तल हो गया हूँ।

माँ : लेकिन क्यों बता दूँ ? बताने से फ़ायदा ?

रंजन : उनको सच का पता लग जाएगा।

माँ : फिर क्या होगा ?

रंजन : फिर बहुत कुछ हो जायेगा माँ। मेरी छाती पर से बोझ हट जाएगा। उन्हें सोचने का मौक़ा मिल जाएगा।

माँ : क्या सोचने का मौक़ा मिल जायेगा ? क्या उन्होंने बिना सोचे समझे अपनी लड़की का रिश्ता हमारे यहाँ किया है ?

रंजन : माँ, उन्होंने जो सोच कर रिश्ता किया था, वह अब नहीं है।

माँ : क्या नहीं है ?

रंजन : नौकरी।

माँ : नौकरी ?

रंजन : हाँ माँ, नौकरी। तुम अच्छी तरह जानती हो कि वे बहुत बड़े आदमी हैं। उनकी लड़की कालिज में पढ़ी है और कारों में घूमती है। उन्होंने हमारे यहाँ रिश्ता किया है तो केवल इस लिये कि मैं पाँच सौ रुपये का कलकत्ता में नौकर था।

माँ : तेरा तो दिमाग़ ख़राब हो गया है। उनको ऐसा अच्छा और अक्लमंद लड़का सात जन्म ढूंढने से न मिलता। वे तेरी नौकरी पर नहीं, तेरे गुणों पर रीझे हैं।

रंजन : अगर तुम्हारा ऐसा ही यक़ीन है तो तुम उन्हें यह बताने से क्यों डरती हो कि मेरी नौकरी छूट गई है ? उन्हें आज ही ख़त लिख कर बता डालो ।

माँ : क्यों बता डालूँ ? अपने बेटे के ब्याह में आप विघ्न डालूँ ।

रंजन : तो फिर यह है न कि तुम सच बात बताने से डरती हो ? तुम्हें भी मालूम है कि उन्होंने मेरे गुण नहीं, नौकरी देख कर रिश्ता किया है ।

माँ : चल ऐसा ही सही, लेकिन मैं उनको कुछ नहीं बताऊंगी । शादी के बाद उन्हें आप ही पता चल जायेगा ।

रंजन : लेकिन माँ, यही तो बड़े अन्याय और बड़े अनर्थ की बात होगी । एक तो हम उनको धोखा देंगे । दूसरे लड़की को न जाने कितना बड़ा सदमा पहुँचायेंगे ।

माँ : इसमें लड़की को सदमा पहुँचाने की क्या बात है ? तुम में तो कोई ऐब या खोट नहीं है, जो उसको सदमा पहुँचेगा ।

रंजन : माँ ऐब और खोट, शक्ल सूरत या आदत ही का नहीं होता । ऐब और खोट पैसे का भी होता है । बिना नौकरी मैं उस लड़की के सपनों की कसौटी पर पूरा न उतर सकूंगा ।

माँ : तो क्या तू समझता है हमारे यहाँ इतना पैसा भी नहीं है कि हम उसे अच्छा खिला पिला सकेंगे ? तेरी मति को क्या हो गया है जो तू ऐसी ऊंटपटाँग बातें सोचता है ?

रंजन : माँ मैं तुमको कैसे बताऊँ कि ये ऊंटपटांग बात नहीं हैं । यह बिलकुल सीधी और सच्ची बात है । तुम आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों को नहीं जानतीं ।

माँ : हाँ, मेरे बाल तो धूप में सफेद हुए हैं ।

रंजन : जहाँ तक आज कल के लड़के-लड़कियों के समझने की बात है, तुम्हारे बाल वाक़ई धूप में सफ़ेद हुए हैं माँ । तुम नहीं

समझ सकतीं कि आज कल की ऊँचे घराने की लड़कियाँ बदशक्ल और बेवकूफ़ आदमी को बर्दाश्त कर सकती हैं, पर बिना कार और बिना दौलत वाले आदमी से निबाह नहीं कर सकतीं। वे आदमी को उस ऐशोआराम की तराज़ू में तौलती हैं, जो वह उनको दे सकता है।

माँ : अरे जा-जा, मुझे लैक्चर देने चला है। तू औरत के मन को क्या जाने ? औरत का जिससे ब्याह हो जाता है, वही उसके लिए सब कुछ हो जाता है। औरतों ने तो भिखारियों के साथ उम्रें काटी हैं।

रंजन : लेकिन खुशी से नहीं काटी, माँ। डर से काटी हैं—भगवान् के डर से, परलोक के डर से, माँ-बाप की बदनामी के डर से। लेकिन आज कल इन बातों से कोई नहीं डरता।

[**रंजन के मित्र रमेश का प्रवेश**]

रमेश : यह आज डर पर कैसे लैक्चर दिया जा रहा है ? क्या अपनी क़ाबलियत का सिक्का जमाने के लिए माँ के अलावा और कोई नहीं मिला ? नमस्ते माता जी।

माँ : जीते रहो बेटा, जीते रहो। ज़रा इसे देख, यह अपनी माँ को पागल बना रहा है।

रंजन : मैं तुम्हे पागल बना रहा हूँ माँ ? क्या तुम सच्चे दिल से कह सकती हो कि···(**गला भर आता है**)

माँ : अरे ले, अब तक बातों से डरा रहा था, अब आँसुओं से डराने लगा। रमेश, यह तो पढ़-लिखकर बच्चा ही रहा। तू ही इसे समझा। मुझ से तो इसने कह दिया, तुम्हारे बाल धूप में सफ़ेद हुए हैं।

रमेश : यह तो है माँ जी। जो ज्ञान इन्होंने प्राप्त किया है वह किसी दूसरे को नसीब नहीं हुआ। हुज़ूर ने अक़्ल और इल्म, दोनों ही निराले पाए हैं।

रंजन : देखो रमेश, मेरी बातों को यूं मज़ाक में न उड़ाओ। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ।

रमेश : यह तो तुम हमेशा से कहते आये हो और हम हमेशा से मानते आये हैं। अब कोई नई बात कहो।

रंजन : देखो रमेश, इस समय तुम मज़ाक न करो। माँ को समझा दो कि वह उन लोगों को ख़बर कर दें, मेरी नौकरी छूट गई है।

रमेश : वाह ! क्या अच्छी ख़बर भिजवाना चाहते हैं जनाब अपनी सुसराल वालों को। शर्म तो नहीं आती ? ख़बर भिजवाने का शौक है तो किसी तरक्क़ी की ख़बर भिजवाइए।

रंजन : (**सहसा उदास, हताश होकर**) लेकिन तरक्क़ी तो वह करेगा जो अच्छा होगा, ईमानदार होगा। मैं तो निकम्मा, नाकारा, बेईमान, रिश्वतख़ोर आदमी हूँ। (**गला रुंध जाता है**)

माँ : (**भावातुर होकर**) बेटा।

रमेश : (**भावुकता से**) रंजन ! तुमने मेरे कहे का बुरा मान लिया ? मैंने इस नीयत से तो न कहा था। मैंने तो महज़ मज़ाक किया था। मुझे माफ़ कर दो, माफ़ कर दो रंजन।

रंजन : (**अपने को सँभालते हुए**) रमेश, मैं क्या करूँ ? जब से मुझे मुअत्तल किया गया है, मेरा अपने ऊपर से भरोसा जाता रहा है। मैं अपने को बहुत छोटा, बहुत कमज़ोर, बहुत निकम्मा समझने लगा हूँ। हर वक़्त मुझे यही महसूस होता है कि मेरा कोई मोल नहीं। मेरा कोई ख़रीददार नहीं। मैं एक ऐसा सिक्का हूँ जो किसी बाज़ार में न चल सकेगा।

रमेश : यह तुम्हारी कमज़ोरी नहीं है, तुम्हारी आत्मा की ख़ूबसूरती है। तुम किसी को धोका देना नहीं चाहते, किसी को छलना, किसी के दिल को ठेस लगाना नहीं चाहते। इसीलिए तुम

अपने गुणों को याद नहीं करते, अपनी कमज़ोरियों को गिनाना चाहते हो।

रंजन : अगर यही बात है तो तुम मुझे उन लोगों को क्यों नहीं बताने देते कि मेरी नौकरी छूट गई है ?

रमेश : इसलिए कि इससे कोई फ़ायदा न होगा—उल्टा वे लोग एक बड़े बेकार के असमंजस में फँस जाएँगे। तुम खुद सोचो तुम्हारी शादी में एक हफ़्ता रह गया है। इस वक़्त अगर उनको तुम्हारी नौकरी छूटने की बात मालूम हो भी जाये तो क्या वे रिश्ता तोड़ सकते हैं ? लड़की शादी से इंकार कर सकती है ? जहाँ तक मैं सोच सकता हूँ, फैसला अब नहीं बदला जा सकता। शादी होगी ही—हाँ, इतना फ़र्क ज़रूर पड़ जाएगा कि उनकी खुशी और उमंग भी मर जाएगी।

रंजन : लेकिन ख़ुशी और उमंग तो मरेगी, अब न सही कुछ देर बाद सही।

रमेश : यह कोई ज़रूरी नहीं रंजन ! समय कब करवट ले ले, नहीं कहा जा सकता। जहाँ समय बुरा कर सकता है, वहाँ अच्छा भी कर सकता है। हो सकता है शादी होने तक तुम नौकरी पर बहाल हो जाओ ; तुम्हें दूसरी नौकरी मिल जाये ; और खुशी और उमंग मरने की नौबत ही न आये।

रंजन : लेकिन नौबत आ गई ? वक़्त ने साथ न दिया ?

रमेश : तो मुहब्बत साथ देगी रंजन। तुम्हारी अभी शादी नहीं हुई, इसलिए तुम नहीं समझ सकते। जिस घड़ी औरत की शादी होती है, उसके दिल में आदमी के लिए वह मुहब्बत पैदा होती है, जो रुपये-पैसे, ऐशोआराम की भूखी नहीं होती ; जो ज़िन्दगी की अन्धेरी घड़ियों में घटने के बजाए, तारों की तरह और ज्यादा चमक उठती है।

रंजन : मुझे तो यह कोरी उपमा जान पड़ती है, रमेश। आजकल

इन्सान को सबसे ज़्यादा मुहब्बत अपने सुख से, अपनी इच्छाओं से और सपनों के साकार होने से है। जहाँ अरमान अधूरे रहते हैं और सपने सिसकते हैं, और सुख, दुख के गहन में घिरा रहता है, वहाँ मुहब्बत पैदा ही नहीं होती है और अगर पैदा होती है तो मुरझा जाती है, मर जाती है।

रमेश : (**बलपूर्वक**) यह गलत है रंजन। तुम किताबों की बातें करते हो, अनुभव की नहीं। मुझे देखो। मैं तुम से कम खूबसूरत हूँ। तुम से कम क़ाबिल हूँ। किसी खास बड़ी नौकरी पर भी नहीं हूँ। जिन दिनों मेरी शादी हुई थी, उन दिनों तो मैं बेकार ही था। लेकिन मैं तुम्हें यक़ीन दिला सकता हूँ कि मेरी पत्नी ने एक घड़ी के लिए भी मेरे अन्दर यह भाव पैदा न होने दिया कि मैं बदसूरत, बेकार या बेअसासा हूँ। कुछ न कमाने की बिना पर उसकी मुहब्बत का हक़दार नहीं हूँ। रंजन, अगर नियति ने समय के फन में ज़हर रखा है तो मुहब्बत के होटों में अमृत भी भर दिया है। इस अमृत पर यक़ीन रखो रंजन, और चुपचाप शादी कर लो।

दूसरा दृश्य

[**वही कमरा—शादी के बाद कांता और रंजन बैठे बातें करते हैं।**]

कांता : आप शादी में चुप चाप क्यों थे ?

रंजन : (**घबरा कर**) शादी में ?

कांता : हाँ, आप तो बोलते ही न थे। इस पर मेरी सहेलियों ने मज़ाक बनाया कि आपको बोलना नहीं आता।

रंजन : (**उदास से लहजे में**) यह मज़ाक तो शायद उन्होंने ग़लत नहीं उड़ाया। मुझे बोलना कहाँ आता है।

कांता : (**बड़ी प्रशंसा और प्यार के स्वर में**) आपको ? अरे कोई आप जैसी आवाज़ पाए तो ; आप जैसा बोल कर दिखाये तो। इतनी बड़ी कम्पनी में इतने बड़े आफीसर, यूँ ही थोड़ा लगा दिये गए। मेरी माँ ने गलत नहीं कहा था कि आप के मुँह से फूल झड़ते हैं।

रंजन : (**उदास होकर**) उनकी बात जाने दो।

कांता : तो किसकी बात करूँ ?

रंजन : अपनी।

कांता : मेरी ? मेरी क्या पूछते हैं। मुझे तो आपने कुछ इस तरह मोह लिया है कि मुझे आपके सिवा कुछ दिखाई नहीं देता। हर समय आपकी सूरत मेरी आँखों के सामने नाचती रहती है। हर घड़ी आपकी आवाज़ मेरे कानों में गूँजती रहती है। आप मेरे पास नहीं होते तो भी मुझे लगता है, मैं आपके पास हूँ।

रंजन : (**प्यार से अधिक, कृतज्ञता के स्वर में**) कान्ता !

कांता : सच, मैं आप को कैसे बताऊँ आप मुझे कितने अच्छे लगते हैं। दो ही हफ़्तों में जैसे मैं आप में पूरी तरह खो गई हूँ। मैं आप से नहीं छुपाऊँगी कि जब आपके यहाँ मेरी शादी तै हुई थी तो मैं खुश नहीं हुई थी। मैं यह चाहती थी कि अपनी सहेलियों और बड़ी बहनों की तरह किसी बड़े शहर में, किसी बहुत बड़े घराने में ब्याही जाऊँ। बातों ही बातों में मैंने अपनी अनिच्छा ज़ाहिर भी कर दी थी। लेकिन मेरे पिता जी ने कहा—वहाँ कस्बे में तुझे कितने दिन रहना है ? तू तो कलकत्ते सर्विस पर जायेगी और वहाँ किस चीज़ की कमी होगी। फिर आपका फ़ोटो आ गया और जैसे मैं सब

भूल गई—और खो गई उस प्यारे प्यारे मुखड़े में, जो अब मेरी रातों में चाँद की तरह जगमगाता है।

रंजन : (**प्रफुल्ल होने के बजाए और उदास होकर**) लेकिन बहुत बार यह भी तो होता है कि फ़ोटो अच्छा होता है, पर अस्ल ख़राब।

कांता : हाय, मेरा अस्ल। मेरा अस्ल तो फ़ोटो से हज़ार गुना अच्छा है। जिसने भी देखा यही कहा कांता, कितने जन्मों की तपस्या का फल पाया है तूने।

रंजन : यह उन्होंने उलट कहा कांता। तपस्याओं का फल मैंने पाया है कि रूप का यह जगमगाता चाँद मेरी ज़िन्दगी के आसमान पर उभरा है। वरना मैं इस लायक़ कहाँ कि···

कांता : (**प्यार भरी नाराज़गी के स्वर में**) अच्छा अच्छा, बस बन्द करो यह बातें। मुझे गाली लगती है।

[**रमेश के खाँसने की आवाज़**]

रमेश : अरे भई, मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

रंजन : कौन रमेश, अरे आओ भई, आओ।

रमेश : नमस्ते भाभी जी।

कांता : नमस्ते, आइये।

रमेश : भाभी जी, माफ़ कीजिये मैं अभी तक इस घर में वक़्त बेवक़्त आने की आदत बदल नहीं पाया हूँ। ज़रा वक़्त लगेगा अपने को सुधारने में।

कांता : क्यों ? क्या मेरे आने से इस घर में आपका आना बुरी बात बन गया है ?

रमेश : अरे यह बात नहीं है भाभी। बात यह कि मेरे लिए तो और अच्छी बात बन गयी है। हाँ, यह हो सकता है कि दो चार ही दिन में आपके लिए अच्छी बात न रहे।

रंजन : अबे बस, बक बक बन्द कर। है न बड़ा शर्मदार कि हमारे

कहने से यहाँ आना बन्द कर देगा। अबे तुम तो उन लोगों में से हो जो आदमी क्या, उसकी लाश का पीछा भी लकड़ियों ही में ज़ाकर छोड़ते हैं।

कांता : हाय हाय, यह क्या कहने लगे। बन्द कीजिए ऐसे बुरे बोल मुँह से निकालना।

रंजन : अब आप ही देखिये भाभी जी, क्या मैं इतना बुरा आदमी हूँ ?

रंजन : और नहीं तो क्या आप अच्छे आदमी हैं ?

रमेश : भाभी, अब आप इन्साफ़ कीजिए। यह मेरी इनसल्ट कर रहा है। क्या मैं इस क़ाबिल हूँ ?

कांता : (**हँसते हुए**) कौन कहता है, आप तो इतने अच्छे हैं।

रमेश : देख लिया बे, भाभी कहती हैं कि मैं कितना अच्छा हूँ— तुझसे भी अच्छा।

कांता : (**विनोदपूर्ण प्रतिवाद के स्वर में**) वाह, यह मैंने कब कहा। अगर आप इनके मुक़ाबले में पूछ रहे हैं तो फिर आपको निराशा ही होगी।

रमेश : (**मज़ाक में चौंक कर**) क्यों भाभी, क्या मैं इससे ज्यादा तन्दुरुस्त नहीं हूँ ?

कांता : लेकिन तन्दुरुस्त होना अच्छाई की निशानी तो नहीं। अक-सर पहलवान तन्दुरुस्त होते हुए बुरे भी होते हैं और बदसूरत भी।

रमेश : लेकिन भाभी, इन साहब के जिस्म को तो देखिए। जिस्म पर पूरा मांस नहीं। चेहरे पर सुर्खी नहीं। कमर है कि लड़कियों की तरह बल खाती है।

कांता : तो क्या कमर ऐसी हो कि बल ही न खाये ; और चेहरा ऐसा लाल ;हो कि पंखा झलने को जी चाहे; और जिस्म ऐसा गठीला हो कि हाथ फेरने पर पहाड़ और पठार याद आयें ?

रमेश : **(अपनी बात के प्रतिवाद से पैदा होने वाली नदामत दूर करने की कोशिश करते हुए)** तब तो भाभी जी शायद आप इनके उन बालों को भी पसन्द करेंगी जो गिनती में कम हैं और कंघा करते ही सिर पर इस तरह फ़्लैट हो जाते हैं जैसे गोली चलने पर इन्सान।

कांता : **(हँसते हुए)** यह तो है भई। मुझे तो यह आपके जैसे मोटे घुँघराले और सख्त बाल क़तई पसन्द नहीं, तो किसी तरह क़ाबू ही में नहीं आने पाते। वे बाल ही क्या जो हाथ फेरने पर नारियल के रेशों को याद दिलाएँ।

रमेश : **(लगभग लाल होते हुए)** तब तो आपको इनके हाथों की वे उँगलियाँ भी बहुत पसन्द होंगी, जिन्हें देखकर मर्दों की निगाहें शर्म से झुक जाती हैं।

कांता : हाय हाय, इनकी उँगलियाँ! इनकी उँगलियों पर तो मैं जान देती हूँ। क्या लम्बी लम्बी, प्यारी प्यारी नाज़ुक उँगलियाँ हैं। सच कहती हूँ कि इनकी उँगलियाँ तो मुझे सबसे ज़्यादा प्यारी हैं।

रंजन : **(हँसकर)**कहिए जनाब कोई और कोशिश करना बाक़ी है?

रमेश : **(अन्त में खिसयाहट को हँसी में उड़ाते हुए)** नहीं भाई, और दो चार कोशिशें की तो शायद अपनी नज़र से आप ही गिर जाऊँ। इस लिए मैं चला।

रंजन : अबे बैठ, बैठ, क्यों बनता है।

रमेश : इसमें बनने की क्या बात है। भाभी ने इस बुरी तरह कनडैम कर दिया कि अपना ब्लड प्रैशर सौ से नीचे गया मालूम होता है।

रंजन : तो ब्लड प्रैशर हाई करूँ? आपको आपके कालिज के ज़माने के रूमानी कारनामों की याद दिलाऊँ?

रमेश : बस बस, बीवी ने कोई कसर छोड़ दी है जो मियाँ पूरी करने चले हैं।

रंजन : तो हम से भी मात खा ली न ? मान गये ?

रमेश : मान गए साहब, आप यक़ीनन यूसफ़-सानी हैं।

रंजन : (हँसते हुए) तो फिर चाय का प्याला पियो। कान्ता, इनके लिए चाय तो लाओ।

कांता : अभी लीजिए ! और खाने को ?

रमेश : मैंने मात इतनी खा ली है भाभी कि इस वक़्त आप केवल चाय ही ले आइये।

कांता : (हँसते हुए) जैसी आपकी मर्ज़ी।

[कांता उठ कर अन्दर चली जाती है]

रमेश : तो सरकार ने इश्क का रंग इतना गहरा चढ़ा दिया है कि दुनियाँ के बाक़ी तमाम रंग फीके पड़ गये हैं।

रंजन : हाँ यार, कुछ यूँ ही समझो। काँता तो मुझसे वाक़ई बे-पनाह प्यार करने लगी है।

रमेश : तो अब मेरी बात पर यक़ीन आ गया ?

रंजन : हाँ यार, मेरी मुहब्बत में कांता ने मेरे और मेरे घर के सारे दोषों को भुला दिया है। वह मेरे घर की ग़रीबी महसूस नहीं करती। मेरी माँ के किसी बर्ताव का गिला नहीं करती। मेरी किसी आदत पर नापसन्दीदगी का इजहार नहीं करती। पहले दिन उसने मुझे बताया था कि उसको सिगरेट के धूएँ से नफ़रत है, लेकिन अब वह खुद कहती है कि आप सिरेगट पीते हुए बड़े प्यारे लगते हैं। और मेरा सिगरेट के धूएँ के मरग़ोले छोड़ना तो उसे इतना पसन्द आया है कि मैं मरग़ोले छोड़ता छोड़ता थक जाता हूँ, पर वह देखते देखते नहीं थकती।

रमेश : तो हो गए न हमारे तजुर्बे के क़ायल ? तैयार हो न हमारे बाँधने को पगड़ी ?

रंजन : (**सहसा गम्भीर होकर**) अभी तो तैयार हूँ। लेकिन रमेश, अभी तक उसे असलियत मालूम नहीं है। कान्ता अभी तक झूठ की चाँदनी में है। सच का सूरज देखना अभी उसे बाक़ी है।

तीसरा दृश्य

[वही कमरा ! कान्ता अन्दर से दौड़ी-दौड़ी आती है।]

कांता : (**उल्लास से**) सुनिये-सुनिये, पिता जी की चिट्ठी आई है।

रंजन : लखनऊ से ?

कांता : हाँ।

रंजन : क्या लिखा है ?

कांता : (**बड़े जोश में**) लिखा है सामान पैक करो और गाड़ी में सवार हो जाओ।

रंजन : (**चौंक कर**) गाड़ी में सवार हो जाओ ? कहाँ के लिए ?

कांता : अपने नये घर के लिए।

रंजन : (**कुछ न समझते हुए**) अपने नये घर के लिए ?

कांता : जी हाँ, अपने नये घर के लिए। क्या आपको नहीं चलना ?

रंजन : लेकिन कहाँ ? मैं कुछ नहीं समझा ?

कांता : (**तनिक झुँझला कर**) ओह, आपने मेरा सारा एक्साइटमेंट ख़त्म कर दिया। अरे आपको नौकरी पर कलकत्ते नहीं जाना ?

रंजन : **(बौखला जाता है)** नौकरी पर ? ओह कलकत्ता ! हाँ जाना तो है। लेकिन अभी हम कैसे जा सकते हैं। अभी तो मकान···

कांता : तलाश करना है, यही परेशानी है न जनाब की ? तो लीजिए हमने यह परेशानी दूर कर दी। आपको मकान मिल गया।

रंजन : **(अबकी बार घबरा कर)** मकान मिल गया ?

कांता : जी जनाब, कलकत्ता में चौरंगी के पास एक ख़ूबसूरत बँगले का एक ख़ूबसूरत हिस्सा ?

रंजन : लेकिन वह कैसे ?

कांता : यह ऐसे कि पिताजी के एक प्रोफ़ेसर दोस्त हैं। वे दो साल के लिए अमरीका में किसी यूनिवर्सिटी में पढ़ाने जा रहे हैं। उनका मकान ख़ाली रहेगा और हम उसे आबाद करेंगे। कहिए कैसी रही ?

रंजन : **(पूरी तरह बौखला कर)** लेकिन···लेकिन अभी हम कैसे जा सकते हैं। अभी तो छुट्टियाँ बाक़ी है।

कांता : यह तो और भी अच्छी बात है। बाक़ी छुट्टियाँ हम कलकत्ता में गुज़ारेंगे।

रंजन : **(टूटे-फूटे स्वर में जैसे विचारों को शृंखलाबद्ध न कर पा रहा हो)** लेकिन कांता, कलकत्ता कुछ मुझे ज़्यादा अच्छा नहीं लगता।····मुझे तो···मुझे तो यहाँ कस्बे में छुट्टियाँ गुज़ारना बड़ा अच्छा लग रहा है।

कांता : **(घृणा से)** यहाँ ? इस अँधेरे घर में ? इस वीरान क़स्बे में ? आपको हुआ क्या है एक पढ़े लिखे आदमी होकर ?

रंजन : क्यों, तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लग रहा ?

कांता : अच्छा लगना ? अरे ग़नीमत समझिये कि मैं यहाँ इतने दिन रह गई हूँ वरना मुझे तो हैरानी है कि क्लब या होटल जाए बिना, कार या टैकसियों में सफ़र किए बग़ैर, मैंने इतने दिन कैसे गुज़ार दिए। **(निर्णायक लहजे में)** अब आप यहाँ से

बिस्तर उठाइये और मुझे मुक्ति दिलाइये इस क़स्बे और इस मकान से ।

रंजन : (**रहस्योद्‌घाटन की ओर पहला क़दम उठाते हुए**) कान्ता, अगर तुमको यह मालूम होता कि तुम्हें इसी क़स्बे में रहना पड़ेगा…

कांता : तो मैं शादी ही न कराती। और इसकी नौबत ही क्यों आती? पिताजी ख़ुद ऐसी जगह रिश्ता न करते ।

रंजन : ओह ! तो तुम्हें मुझ से मुहब्बत नहीं है, कलकत्ता से मुहब्बत है ?

कांता : यह इसमें तुमसे दुश्मनी और कलकता से मुहब्बत का क्या सवाल आ गया ? जब आपको कलकत्ता जाना है और मुझे आपके साथ रहना है तो यह, इस घर में या इस क़स्बे में रहने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?

रंजन : लेकिन कान्ता, अगर मैं कहूँ मुझे कलकत्ता जाना अच्छा नहीं लगता, मैं यहीं रहना चाहता हूँ ?

कांता : (**कुछ न समझते हुए**) आप यहीं रहना चाहते हैं ? और नौकरी ?

रंजन : अगर मैं कहूँ मुझे नौकरी करना भी अच्छा नहीं लगता ?

कांता : तो मैं फ़ौरन कह दूँगी, मुझे भी इस घर में एक घड़ी रहना मंज़ूर नहीं ।

रंजन : मेरे साथ भी ?

कांता : (**अपनी भावनाओं के वेग का रुख़ मोड़ने की कोशिश करते हुए**) देखिये, मैं ऐसा मज़ाक पसन्द नहीं करती । मैं आप से साफ़-साफ़ कहती हूँ कि अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रहूँगी। अब तक जब भी मैंने कलकत्ता जाने की बात की है, आपने बड़ी चालाकी से बात को टाल दिया है । लेकिन अब आप बात टाल न सकेंगे । बताइये हमको किस दिन जाना है ?

रंजन : (**गहरी साँस लेकर**) कान्ता, अगर मैं कहूँ अब हम कलकत्ता

न जा सकेंगे। मेरी नौकरी छूट गई है ?

कांता : (**जैसे ऊपर से नीचे गिर कर**) नौकरी छूट गई है ? यह कैसे हो सकता है ?

रंजन : कभी-कभी बहुत कुछ हो जाता है कान्ता। और मेरे सिलसिले में यह हो गया है।

कांता : आपकी नौकरी छूट गई है ?

रंजन : हाँ कान्ता, मेरी नौकरी छूट गई है।

कांता : कब ?

रंजन : दो महीने हुए।

कांता : यानी शादी से पहले ?

रंजन : हाँ।

कांता : और तुमने यह बात अब तक छुपाई ?

रंजन : हाँ कान्ता, लेकिन ···

कांता : (**प्रचण्ड प्रतिक्रिया के साथ**) ओह ! तुमने इतना बड़ा धोखा दिया ? मेरे और मेरे पिताजी के साथ इतना छल किया ? तभी तुम लोग ऊपर से इतने मासूम, इतने भेड़ बने हुए थे। तभी तुम मुझसे इतनी मुहब्बत जतलाते थे और तुम्हारी माँ इतनी चिकनी-चुपड़ी बातें करती थी ?

रंजन : कान्ता, यह जो कुछ तुम कह रही हो सच है, लेकिन अगर तुम ज़रा समझने की कोशिश करो।···

कांता : (**विद्रोह के स्वर में**) मैं और तुम लोगों को समझने की ? क्या अभी समझने को कुछ और बाक़ी रह गया है ? क्या अभी छल का कोई और छिलका तुम पर से उतरना है ? ओह तुमने मेरे साथ इतना घिनौना खेल खेला। मेरे सपनों और मेरे अरमानों को यूँ रोंद कर रख दिया। यह खूबसूरत चेहरा अन्दर से इतना कुरूप और कपटी हो सकता है, यह मैंने पहले क्यों न जान लिया।

[ग़म और गुस्से से रो पड़ती है।]

रंजन : **(उसे प्यार से बाहों में लेते हुए)** कांता !

कांता : बस बस, मेरे हाथ न लगाओ। मुझे छूने की कोशिश न करो। आज इन हाथों में मेरे लिए अमृत नहीं, साँप और बिच्छुओं का ज़हर है।

चौथा दृश्य

[वही कमरा]

माँ : **(बड़ी नर्मीसे)** बहू !

कांता : **(बड़ी कड़वाहट से)** क्या है ?

माँ : आज मेरा जी ठीक नहीं है। अँगीठी के आगे बैठा नहीं जा रहा। तू रंजन के लिए खाना बना देगी ?

कांता : **(बड़ी कठोरता से)** क्यों ? क्या आज तक मैंने खाना नहीं बनाया है जो इस तरह गिड़गिड़ा कर खाना बनाने को कह रही हो ?

माँ : बहू, मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो इस लिए कह रही हूँ कि आज बहुत गर्मी है। अँगीठी के पास बैठने में तुझे काफ़ी तकलीफ़ होगी।

कांता : **(क्रूर व्यंग से)** हाँ, अँगीठी के पास बैठने में सचमुच तकलीफ़ होगी, क्योंकि बाक़ी घर में तो कूलर और पंखे लगे हैं।

माँ : **(चोट खाकर पर फिर भी हलीमी से)** बहू इतनी निराश क्यों होती है। एक दिन इस घर में कूलर और पंखे भी लग जायेंगे।

कांता : हाँ हाँ, क्यों नहीं। पाँच सौ रुपये पाने वाले अफ़सर के घर

में कूलर और पंखे न लगेंगे तो किसके घर में लगेंगे ?

माँ : (**आहत होकर**) बहू !

कांता : क्यों ? क्या मैंने ग़लत कहा है ?

माँ : बहू, तुझे यक़ीन क्यों नहीं आता कि मेरा रंजन सचमुच पाँच सौ रुपये पाने वाला अफसर था, लेकिन देख जलने वालों ने···

कांता : (**नक़ल उतारते हुए**) 'रिश्वत का झूठा इलजाम लगा कर नौकरी से मुअत्तल करा दिया ; लेकिन जाँच होगी। मान-सरोवर से हंस आयेंगे; दूध का दूध, पानी का पानी अलग होगा; और पाँच सौ रुपये की नौकरी फिर से मिल जायेगी।' माताजी, अब यह सब दोहराने की आपको ज़रूरत नहीं। यह सब कुछ तो मुझको याद हो गया है।

माँ : बहू, तू हमारे कहे को झूठ माने, लेकिन नौकरी के उन काग़ज़ों को तो झूठा नहीं ठहरा सकती, जो लड़के ने तुझे दिखाये हैं।

कांता : नौकरी के कागज़ ? क्या आप समझती हैं कि बात ही झूठी बन सकती है, कागज़ झूठे और फ़रजी नही बन सकते ? माताजी, आपके बेटे ने तो नक़ली कागज़ टाइप कराए होंगे, लोग तो जाली नोट बना लेते हैं।

माँ : (**पूरी तरह आहत होकर**) बहू, तू इस हद तक बदगुमान हो गई है ? तुझ पर लड़के के क़सम-धर्म उठाने का भी असर नहीं हुआ ? चल, मत कर यक़ीन इस बात का कि वह अफ़-सर था। पर वह तेरा पति तो है। बस उसका यही दोष है कि वह बेकार है। कुछ कमा कर नहीं लाता। उसका इतना अपमान, इतना निरादर तो न कर। तूने दो महीने से उसकी तरफ़ देखा तक नहीं। उसकी ख़बर तक नहीं लेती। कभी तो तू उसे प्यार करते, उसका नाम लेते थकती न

थी। अपने हाथ से उसे चाय देती थी। अपने हाथ से उसके कपड़े ग़ुसलख़ाने में टाँग कर आती थी। वह बीमार हो जाता था तो उसके सिरहाने रात आँखों में काट देती थी। पर अब तुझे न उसके आने से मतलब है; न जाने से; न अच्छा या बीमार होने से। कांता, क्या नौकरी न रहने से उसमें कुछ नहीं रहा ? क्या दुनिया में पैसा ही सब कुछ है ?

कांता : अगर पैसा ही सब कुछ नहीं होता तो आपने मेरे बजाय किसी भिखारी की बेटी को अपने बेटे की बहू क्यों नहीं बनाया ? आपको पैसे वाले घर में बेटा ब्याहने की ज़रूरत थी, मुझे पैसे वाले घर में जाने की ज़रूरत न थी। दुनिया में एक तपस्विनी मैं ही रह गई थी ?

माँ : लेकिन बहू, इस घर में इतनी कमी भी तो नहीं कि तू कहे, तुझे कुछ नहीं मिला। घर का घर है। इसमें भगवान् का दिया काफ़ी कुछ है। इस पर लड़का पढ़ा लिखा है।

कांता : (**असीम अविश्वास प्रकट करते हुए**) क्या मालूम यह सब कुछ भी सच है या डिग्रियाँ और दस्तावेज़ें भी जाली हैं।

माँ : (**अपमान से काँप कर**) बहू ! हमारा इतना अपमान तो न कर।

कांता : (**बड़ी तेजी से**) वरना क्या होगा ? झूठ का व्यापार किया है तो झूठे के नाम से क्यों बिदकती हो ? अगर इस नाम से इतनी नफ़रत थी तो मेरे पिता जी से सच-सच क्यों न कहा कि लड़का निकम्मा और बेकार है। घर में राशन के अलावा कुछ नहीं है। शादी, दहेज के लोभ में की जा रही है।

माँ : (**क्रोध से काँपते हुए लहजे में**) कांता···कांता ऐसे न कह। इतना अपमान, इतनी नफ़रत मुझसे न सही जायेगी। मैं दिल की मरीज़ हूँ।

कांता : तो दहेज में ख़मीरे और मुरब्बे के डिब्बे ही माँग लिए होते।

माँ : (**चीखकर**) कांता। का...न...ता (**बेहोश हो जाती है। रमेश अन्दर आता है**)

रंजन : कांता ! कांता यह माँ को क्या हुआ ?

कांता : (**व्यंग के विषैले स्वर में**) कुछ नहीं हुआ। ज़रा सच के शीशे में अपना असली चेहरा दिखाई दे गया था।

पाँचवाँ दृश्य

[**वही कमरा। रमेश अन्दर से निकलता है**]

रमेश : भाभी। भाभी, आप यहाँ बैठी हैं।

कांता : (**भाव शून्य स्वर में**) हाँ।

रमेश : आप अन्दर चलिए। यहाँ अकेली क्यों बैठी हैं।

कांता : मुझे यहीं बैठना अच्छा लगता है।

रमेश : लेकिन रंजन अकेला पड़ा है, उसके सिर में बड़ा दर्द है।

कांता : तो मैं क्या करूँ। पनवाड़ी की दुकान से सिर दर्द की गोली मँगा कर दे दीजिए।

रमेश : (**आहत होकर**) भाभी, आप इतनी सख्त हो गई हैं ? आप तो रंजन का इतना ख्याल रखती थीं।

कांता : मैं किसी का ख्याल नहीं रखती थी।

रमेश : यह गलत है भाभी। गुस्से में आप अपनी भावना को भी भुला बैठी हैं। आपको रंजन से बेहद मुहब्बत थी और बेहद मुहब्बत है।

कांता : मुझे न मुहब्बत थी, न मुहब्बत है, न कभी हो सकती है। जिस बन्धन में धोखे से बँध गई हूँ, मैं उसे तोड़ नहीं सकती

वरना मैं कभी की सब को लात मार कर चली गई होती ।

रमेश : (**चौंक कर**) भाभी यह आपने क्या कह दिया, कैसे कह दिया ? आप आपने पति को···

कांता : जो बेकार है, निकम्मा है, जो घर में सिगरटें फूंकता है, वह मेरा पति नहीं । मेरा पति तो वह था जो कलकत्ता में पाँच सौ रुपये पाने वाला अफ़सर था ।

रमेश : लेकिन भाभी, रंजन वही आदमी है ।

कांता : नहीं, मैं नहीं मान सकती ।

रमेश : क्या आप मेरी बात पर यक़ीन नहीं कर सकती ? भाभी यक़ीन मानिए, रंजन सचमुच कलकत्ता में नौकर था । वह सचमुच पाँच सौ रुपये पाता था । लेकिन वक़्त ने ऐन वक़्त पर दग़ा की । शादी से एक महीने पहले ही एक झूठे इलज़ाम में उसे नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया ।

कांता : नहीं नहीं, यह आपको भी धोखा दिया गया है । ऐसे आदमी को कौन पाँच सौ रुपये देगा ?

रमेश : (**हैरान होकर**) भाभी, आप यह क्या कह रही हैं ?

कांता : ठीक कह रही हूँ । ऐसे जिस्म, ऐसी आवाज़, ऐसी पर्सनेलिटी वाले आदमी को कौन अफ़सर बना सकता है ?

रमेश : भाभी, आपकी नज़र से रंजन का जिस्म, उसकी आवाज़, उसकी पर्सनेलिटी भी उतर गए ? यह आपको क्या हो गया ?

कांता : कुछ नहीं, मेरी आँख के आगे से पर्दा उठ गया है ।

रमेश : (**बड़ विश्वास और तर्क संगत बल के साथ**) नहीं भाभी, फिर मैं कहूँगा कि आँख से उठ कर पर्दा अक्ल के सामने आ गया है । आप रंजन को यूँ कंडेम नहीं कर सकतीं । वह बेहद इन्टैलीजेंट आदमी है । उससे ज़्यादा क़ाबिल लड़का शायद आप को ढूंढे न मिल सकता था । और उसकी शक्ल, उसकी पर्सनेलिटी—भाभी क्या भूल गईं उस दिन की बात—किस गर्व से,

किस प्यार से और किस अपनेपन से आपने रंजन के रूप को सराहा था। मैं प्यार की, गर्व की, प्रशंसा की उस चमक को कभी नहीं भूल सकता, जो मैंने उस दिन रंजन के लिए आप की आँखों में देखी थी।

कांता : वह मुँह-दिखावा था।

रमेश : **(विस्मय की चरम सीमा पर पहुँच कर)** भाभी !

कांता : हाँ ! वरना न मुझे ऐसी शक्ल पसन्द है, न मुझे ऐसी आवाज़ पसन्द है, न ऐसा जिस्म पसन्द है। मैं मुर्दनी नहीं चाहती, जिन्दगी चाहती हूँ।

रमेश : लेकिन रंजन में बहुत जिन्दगी है। हाँ बदनसीबी से आपने चाँद को उस समय देखा है, जब वह गहन में है। मैं आपको कैसे बताऊँ कि कभी यही रंजन कितना स्मार्ट और हँसमुख था। इसका चेहरा मुस्कराहट से सूरज की तरह दमकता था और इसकी आवाज़ कालिज की गेलरियों में गूँजा करती थी। नौकरी मिलने पर भी इसकी जिंदा-दिली में फ़र्क न आया। लेकिन नौकरी छूटते ही एक काला बादल इस पर छा गया। नौकरी के ग़म ने उसे घुला डाला है।

कांता : और मुझे घुली हुई, मुरझाई हुई, कुम्हलाई हुई चीज़ों से नफ़रत है।

रमेश : लेकिन इन्सान को एक फूल, एक मोम की बत्ती समझना ग़लत है भाभी। फूल मुरझा कर नहीं खिलता; मोम की बत्ती पिघल कर फिर नहीं खड़ी होती। लेकिन इन्सान डूब कर उभरता है, गिर कर उठता है, कुम्हला कर हरा होता है। आज रंजन बेकार है, उदास है, गहनाया हुआ है। लेकिन कल वह फिर पहले जैसा हो सकता है। इंसान का आज ही न देखो, उसका कल भी देखो।

कांता : लेकिन मैं तो अपनी जिन्दगी का 'आज' देखती हूँ। जो मेरी जिन्दगी का 'आज' नहीं बना सकता, वह मेरे लिए कुछ नहीं है।

छठा दृश्य

[वही कमरा। रंजन एक नया सूट पहने खड़ा है। कांता कुर्सी पर बैठी स्वटर बुन रही है। रमेश रंजन के पास खड़ा उसका सूट दिखा रहा है।]

रमेश : (अचरज से) यह कुछ नहीं है भाभी ?

कांता : हाँ यह कुछ नहीं है। यह कोई डिज़ाइन है ?

रमेश : लेकिन भाभी रंजन को तो यह कपड़ा इतना पसन्द आया···

कांता : इनकी क्या है। इनको कभी कोई ढंग की चीज़ पसन्द आई है ? आपने अपने जैसा कपड़ा क्यों नहीं दिलाया ?

रमेश : (ताज्जुब से) इस सूट जैसा ? आपको यह डिज़ाइन पसन्द है ?

कांता : मुझे तो बड़ा पसन्द है। देखिये आप पर कैसे सजता है।

रमेश : कमाल है भाभी कि आपने इसकी तारीफ़ की। आज तक तो मेरे किसी दोस्त ने इसे पसन्द किया नहीं।

कांता : इन्हीं की जैसी बढ़िया पसन्द वाले दोस्त होंगे वे भी। मुझे तो आपके कोट का डिज़ाइन भी पसन्द है और सिलाई भी।

रमेश : लेकिन सूट तो रंजन ने भी उसी से सिलवाया है।

कांता : मगर जब जिस्म ही न हो तो दर्ज़ी क्या करेगा। कारीगर इसी तरह तो बदनाम होते हैं। देखिये, आप कमीज़ पहनते हैं तो भी जिस्म भरा भरा लगता है; लेकिन ये कोट भी पहन लेते हैं तो जिस्म सरकंडा सा ही नज़र आता है।

रमेश : (प्रतिवाद करते हुए) ऐसी बात तो नहीं है भाभी। अकेली कमीज़ में तो उलटा मेरा बढ़ा हुआ पेट नज़र आने लगता है।

रंजन : (बात का कष्टदायक प्रसंग बदलने की गर्ज से) रमेश !

रमेश : क्या है रंजन ?

रंजन : ज़रा एक सिगरेट देना।

कांता : (भड़क कर) यह फिर आपको सिगरेट की हुड़क उठी ?

रंजन : (सहमे से स्वर में) सुबह से दूसरी ही तो पी रहा हूँ कांता।

कांता : तो क्या दस पीने का इरादा है ? मैं आपसे दस दफ़ा कह चुकी हूँ कि यह लत छोड़ दीजिये। लेकिन आप हैं कि बाज़ ही नहीं आते।

रमेश : अरे आप को सिगरेट पीने से इतनी मुख़ालफ़त कब से हो गई ? क्या हमारा पीना भी बन्द किया जायेगा ?

कांता : आपका पीना क्यों बन्द होगा। लेकिन जो आदमी कमाता नहीं, काम नहीं करता, उसे सिगरेट पीने का क्या हक़ है ? **(घृणासे जलते लहज़े में)** ज़रा इनके दाँत तो देखिये, कितने पीले पड़ गए हैं। हाथों से और साँस से हर वक़्त बू आती है।

[अन्दर से माँ की आवाज़ आती है]

माँ : रंजन ! बेटा रंजन ! ज़रा सब्ज़ी तो लाकर दे दे। आग जा रही है।

रंजन : **(इस बहाने जाते हुए)** रमेश, मैं अभी आया पाँच मिनट में। **(माँ की आवाज़ का उत्तर देते हुए)** माँ, अभी आया।

रमेश : यार मैं भी चला। मुझको भी जल्दी है।

कांता : **(सहसा रोकने की चेष्टा करते हुए)** आपको ऐसी क्या जल्दी है ? बैठिये, बैठिये।

रमेश : नहीं भाभी, दफ़्तर का कुछ काम घर लाया हुआ हूँ। उसे पूरा करना है।

कांता : हाँ, हाँ। **(रमेश के कोट को होले से झटका देकर और दबे, रहस्यपूर्ण स्वर में)** बैठिये भी—इन्हें जाने दीजिए।

रंजन : **(कान्ता के शब्द सुने बिना)** रमेश, ज़रा बैठ तो। मैं अभी आया। फिर मैं भी तेरे साथ चलूंगा।

[रंजन चला जाता है। कान्ता और रमेश अकेले रह जाते हैं।]

कांता : **(अजीब से वासनापूर्ण लहजे में)** यह आपको हमारे पास बैठने में क्या उज़्र होता है जी ?

रमेश : **(कुछ समझ कर)** आपके पास बैठने में ? नहीं तो।

कांता : तो फिर रोकने पर भी क्यों जा रहे थे ? **(आँखें नचा कर)** या नख़रे दिखा रहे थे ?

रमेश : मैं आप से नख़रे दिखाऊँगा भाभी ?

कांता : लगता तो कुछ ऐसा ही है। वरना क्या बात है कि जब ये नहीं होते तो आप यहाँ बैठते ही नहीं, चले जाते हैं।

रमेश : **(हड़बड़ा कर)** भाभी, दरअसल बात यह है कि रंजन के पास तो काफ़ी वक़्त होता है, लेकिन आपको तो घर का काम···

कांता : **(ऐसे वासनामय लहजे में, जिसका उद्देश्य साफ़ व्यक्त होता जा रहा है)** तो क्या आप के लिए मैं घर का काम नहीं छोड़ सकती ? कभी आज़मा कर तो देखिए। **(आँखों में उद्देश्य की झलक स्पष्ट हो जाती है)**

रमेश : **(चौंक कर)** भाभी !

कांता : आप समझते हैं कि आप बस अपने दोस्त ही को अच्छे लगते हैं ? किसी और का दिल नहीं चाहेगा आपसे बातें करने को ?

[**आँखों में आँखें डाल देती है**]

रमेश : **(जान कर भी अनजान बनते हुए)** अरे भाभी यह तो आप लोगों की मुहब्बत है, वरना अपने में क्या। अक़्ल मोटी, जिस्म मोटा, आवाज़ मोटी, उस पर दफ्तर में एक मामूली सुपरिन्टेंडेंट···

कांता : वाह वाह, आप अपने को ऐसा समझते हैं ? मुझ से पूछिये। सच, मुझे तो आप और आपकी बातें इतनी अच्छी लगती हैं कि आप के चले जाने के बाद में भी याद आती रहती हैं। और दफ़्तर में सुपरिन्टेंडेंट होना क्या कोई मामूली बात है ? यह तो क़ाबिल लोगों ही को नसीब होता है।

रमेश : **(अब भी बात के टल जाने की आशा से)** अरे यह बात जाने दो भाभी। नौकरी का अक़्लमन्दी से कोई सम्बन्ध

नहीं। अगर कोई सम्बन्ध होता तो मैं बेकार होता और रंजन मेरी जगह, बल्कि मुझ से भी ऊँची जगह······

कांता : (**ऊबकर और प्रसंग बदलने की स्पष्ट नीयत से**) बस-बस··· इनकी बातें न कीजिये। यह कितने अक़लमन्द हैं, मैं जानती हूँ। नाच न आवे, आंगन टेढ़ा।

रमेश : नहीं भाभी, यह आप उसके साथ ज़ुल्म करती हैं। उस जैसा क़ाबिल आदमी······

कांता : अच्छा-अच्छा मैं मान गई। अब इनकी बात तो छोड़िये। (**सहसा आगे झुक कर**) अरे आपने यह अँगूठी कब बनवाई ?

रमेश : नई तो नहीं बनवाई, पुरानी है। हाँ पहनी अभी है।

कांता : देखिये, आप यह अँगूठी ज़रूर पहना कीजिए। हाय, आपकी उँगली में कितनी अच्छी लगती है। ज़रा हाथ लाइए, देखूँ नगीना कैसा है ?

रमेश : (**अर्थपूर्ण ढंग से**) यह नगीना नहीं है भाभी, मामूली पत्थर है।

कांता : (**उसकी बात उड़ाते हुए**) हुआ करे, पर मुझे तो बड़ा अच्छा लगा है। देखिए आप जब यहाँ आया करें तो इसे ज़रूर पहन कर आया करें। और हाँ, वह आपका चाकलेट रंग का सूट क्या हुआ जो मेरी शादी में पहन कर आए थे ? मैं कैसे बताऊँ आप उस सूट में कितने अच्छे लगते हैं···जिसने भी देखा था···

रमेश : (**घबरा कर कमरे से चले जाने की नीयत से**) अरे छः बज गए, भाभी मैं चला।

कांता : (**आगे बढ़ कर**) नहीं आप अभी नहीं जाएँगे। इतने दिन बाद तो आप से अकेले में बात करना मिला है, बैठिए।

रमेश : (**पूरी तरह घबरा कर**) भाभी, मेरा हाथ तो छोड़िए···कोई आ गया तो···

कांता : (**वासनापूर्ण शोख़ी से**) तो क्या होगा ? हम अपने देवर का

हाथ भी नहीं पकड़ सकते ? या यह डर है कि हमारे हाथ लगने से आपके हाथ मैले हो जाएँगे ?

रमेश : **(सख़्ती से)** भाभी, मैं हाथ के मैले होने से नहीं डरता। हाँ दिल के मैला हो जाने से ज़रूर डरता हूँ। नमस्ते।

[हाथ झटक कर चला जाता है।]

सातवाँ दृश्य

[वही कमरा। रंजन बाहर जाने के लिए कोट पहन रहा होता है कि माँ आ जाती है]

माँ : अरे रमेश को घर खाने पर बुला कर तू कहाँ जा रहा है ?

रंजन : रमेश को बुलाने

माँ : **(हैरानी से)** रमेश को बुलाने ?

रंजन : हाँ माँ। मैं जानता हूँ वह आज भी नहीं आएगा। वह मुझ से किसी बात पर रूठ गया है।

माँ : **(जैसे उसके न आने का कारण जानती हो)** नहीं, वह तुझ से नहीं रूठा। वह ऐसा नहीं है, रंजन।

रंजन : तो फिर क्या बात है कि वह दो महीने से घर नहीं आया ? कितनी बार मैंने उससे कहा, कितनी बार पकड़ कर लाना चाहा, पर वह एक बार भी घर नहीं आया ? कोई बात जरूर हुई है कि वह एक साथ यूँ बदल गया है।

माँ : **(गहरी साँस लेकर)** बेटा, रमेश नहीं बदला है। किसी और की आँख बदल गई है।

रंजन : **(चौंककर)** क्या ? किसकी आँख बदल गई है ? तुम क्या कह रही हो ?

माँ : बेटा, अब रमेश का यहाँ न आना ही ठीक है। औरत पर कोई शक नहीं करता, पराये बेटे को सब दोष दे देते हैं।

रंजन : (**विस्मय से**) माँ, तुम···तुम यह क्या कह रही हो ? क्या कांता···?

माँ : (**अन्दर जाते हुए**) बस बेटा, जो धर्म की बात नहीं है, उसे मुँह पर लाना भी पाप होता है।

रंजन : माँ, तुम कहाँ जा रही हो ? माँ, तुमको बताना होगा—तुमको मुझे सब कुछ बताना होगा।

[**माँ के पीछे-पीछे अन्दर जाता है। कुछ ही क्षण बाद रमेश अन्दर आता है। वह अन्दर नहीं जाता। वहीं खड़ा रहता है। इतने में रंजन अन्दर से आता है। रमेश को देखते ही उसके गले लग जाता है।**]

रंजन : रमेश ! तुम आ गए ? आखिर मुझ पर रहम आ गया ?

रमेश : (**हँसने की चेष्टा करते हुए**) तुम पर ? तुझे हुआ क्या है ?

रंजन : (**वेदना से**) मुझे ? बहुत कुछ हो गया है रमेश। (**गहरी सांस लेकर**) ज़िन्दगी में घड़ी ही ऐसी आ गई है कि हर चीज़ ने मेरा साथ छोड़ दिया है। काम नहीं, दाम नहीं, प्यार नहीं, दिलासा नहीं। अपनी जिन्दगी का कमण्डल लिए दर-दर मारा फिरता हूँ, पर संवेदना का खोटा सिक्का तक इसमें कोई नहीं डालता।

रमेश : (**कन्धों से पकड़ कर**) रंजन, तू इतना निराश हो गया है ? तेरी आस का दिया यूँ बुझ गया ?

रंजन : हाँ, रमेश ! आस और उमंग की लौ बुझ कर धूएँ की एक मिटती लकीर बन गई है और मैं, इस मिटती लकीर के साथ मिट रहा हूँ।

रमेश : तेरा तो दिमाग़ ख़राब हो गया है। एक मामूली सी नौकरी की ख़ातिर···

रंजन : यह नौकरी की बात नहीं है रमेश। नौकरी ने मुझे नहीं हराया है। हराया तो कान्ता ने हराया है। मैं दुनिया भर की उदासीनता और अवहेलना बर्दाश्त कर सकता हूँ, लेकिन उसकी···

रमेश : (**बात काट कर**) वह बेसमझ है रंजन। उसे खुद मालूम नहीं कि वह क्या चाहती है, किसे चाहती है।

रंजन : (**बहुत गहरी साँस लेकर**) लेकिन मुझे इतना मालूम है कि वह मुझे नहीं चाहती। उसके नज़दीक मेरा अब कोई मोल नहीं रहा।

रमेश : ऐसी बात नहीं है रंजन। उसे सदमा सा पहुँचा है। उसका मानसिक सन्तुलन डोल गया है। उसके विचार और उसकी भावनाएँ अपनी कीली से हट गए हैं, वरना एक पत्नी···

रंजन : (**विद्रोह के स्वर में**) रमेश, भगवान के लिए मेरे सामने पति पत्नी की वह आदर्शवादी फ़िलासफ़ी बयान न करो, जिसके बहकावे में आकर मैंने शादी कर ली। हो सकता है जो कुछ तुम कहना चाहते हो, वह तुम्हारा अनुभव हो। लेकिन मेरा अनुभव केवल इतना है कि दुनिया में जो भी सम्बन्ध है, पैसे का है। पैसे के बिना इन्सान एक बेकार, बेमोल, बे-वक़अत चीज़ है। उसकी खूबसूरती, उसकी अक़लमन्दी, उसकी मुहब्बत, सब मिलाकर भी पैसे के पलड़े का पासंग नही बन सकते।

रमेश : नहीं रंजन, यह तुम्हारी अपनी निराशा की परछाईं है, वरना मुहब्बत का धागा बहुत मजबूत होता है।

रंजन : बहुत मजबूत? (**एक जहरीली हँसी हँस कर**) रमेश, यह धागा सब से ज़्यादा कमज़ोर, सब से ज़्यादा बे-भरोसा होता है।

रमेश : (**बलपूर्वक**) यह ग़लत है।

रंजन : (**तेजी से**) यह ग़लत है?

रमेश : हाँ।

रंजन : **(जोर से)** तो ज़रा बताओ उस दिन मेरे पीछे तुम घर से उठ कर क्यों चले गए थे ? क्यों उस दिन के बाद आज तक मेरे घर नहीं आए ?

रमेश : **(इस विचार से सिहर कर कि कहीं रंजन को उस दिन की घटना का पता तो नहीं चल गया)** रंजन !

रंजन : उस दिन तुमने स्वयं इस धागे का कच्चापन देखा था, इसी लिए न ?

रमेश : **(अपराधी सा)** रंजन !

रंजन : मुझे अभी सब कुछ मालूम हुआ है रमेश। माँ ने उस दिन कान्ता और तुम्हारी दोनों की बातें सुन ली थीं।

रमेश : **(भावुकता से)** लेकिन तुमने मुझे तो दोषी नहीं पाया रंजन ?

रंजन : **(गहरी साँस छोड़कर)** मैं तो कांता को भी दोषी नहीं कहता रमेश। कांता ने जिस आदमी से शादी की थी, वह बेकार आदमी नहीं था। वह पाँच सौ रुपये पाने वाला एक अफ़सर था। उसने उसी आदमी से मुहब्बत की थी और आज भी उसी आदमी से मुहब्बत करती है। इसीलिए मैं उसके लिए कुछ नहीं हूँ। तुम उसके लिए कुछ हो गए हो।

रमेश : **(सफ़ाई पेश करने के स्वर में)** लेकिन रंजन, मैंने आज तक अपने आप को उसकी नज़रों में उठाने की कोशिश नहीं की। मैंने हमेशा अपने को छोटा करके ही पेश किया है !

रंजन : लेकिन मैं तुमको क़सूरवार कब ठहराता हूँ दोस्त ? और मैं कांता ही को कहाँ क़सूरवार मानता हूँ। वह अपने सपनों के पीछे भाग रही है। जहाँ भी उसे अपने स्वप्नों की हल्की-सी धुन्ध नज़र आ जाती है, वह वहीं खिंच जाती है—आज उसे न मैं दिखाई देता हूँ, न तुम।

रमेश : लेकिन अगर यह बात है तो तुम इतने निराश क्यों होते

हो ? वह तुमसे तो नफ़रत नहीं करती। वह तो उस आदमी से नफ़रत करती है जिसने उसके सपने तोड़ दिए, उसकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। जिस दिन तुम वह आदमी न रहोगे, नौकर हो जाओगे, उसके सपनों की क्यारियाँ सींच सकोगे, उस दिन वह फिर तुम से मुहब्बत करने लगेगी।

रंजन : **(गहरी साँस छोड़ कर)** हाँ, अगर वह दिन आया।

रमेश : वह दिन आएगा दोस्त और जल्द आएगा, और ज़रूर आएगा और मुहब्बत के और प्यार के वे उपहार लेकर आएगा, जो कभी तुम्हारे थे, और जो कभी फिर तुम्हारे होंगे।

[सहसा रंजन की माँ दौड़ती अन्दर आती है। उसके चेहरे पर आज खुशी का एक नया सवेरा, अपने समस्त प्रकाश के साथ फूट रहा है।]

माँ : रंजन ! बेटा रंजन !

रंजन : **(उठ कर)** हाँ, माँ।

माँ : **(खुशी से पागल लहजे में)** मेरे बेटे तू यहाँ आ। मेरे कलेजे से लग जा। मेरे चाँद, तू गहन से निकल आया।

रंजन : **(विस्मित होकर)** क्या हुआ माँ ?

माँ : वह हो गया जिसकी आस में मैंने रात-रात भर भगवान पर आँसुओं का जल चढ़ाया है। वह हो गया जिसकी मिन्नत माँगने के लिए मैंने किसी देवी देवता, पीर पुजारी को नहीं छोड़ा। मेरे बेटे, तू फिर से नौकर हो गया।

रंजन : **(खुशी से नाच कर)** माँ !

रमेश : **(खुशी से क़रीब जाकर)** क्या चिट्ठी आई है माँ जी ?

माँ : चिट्ठी नहीं बेटा, तार आया है। यह देख। उन्होंने मेरे रंजन को नौकरी पर बहाल कर दिया है। नौकरी पर बुलाया है। रुपये भेजे हैं। आज मेरे भाग्य का कमल खिल गया रमेश— आज मैं तिर गई। **(जाकर रंजन से लिपट जाती है)**

आठवाँ दृश्य

[कलकत्ते में एक सुन्दर कोठी का कमरा। कांता दौड़ी-दौड़ी आती है]

कांता : सुनिये, ज़रा बाहर आइये। तालाब में कमल खिल गए।

रंजन : कमल खिल गए ? पर रात को तो बन्द थे।

कांता : **(प्यार से चिढ़ाते हुए)** रात को बन्द ही रहते हैं—पर सुबह होने पर तुम्हारी तरह चादर लम्बी तान कर सोए नहीं रहते।

रंजन : अरे भई हमारा और कमलों का क्या मुक़ाबला। मुक़ाबला तो तुमसे है कि सोती हो तो रूप का सवेरा जागता है, जागती हो तो सितारों को नींद आती है।

कांता : **(खुश होकर)** आज तो फिर कविता करने पर उतर आए हो ? पर मेरी बात छोड़ो। यह बताओ पिताजी ने किया है न हमारे लिए सचमुच एक सुन्दर बंगले का इन्तज़ाम ?

रंजन : हाँ भई, यह तो है। तुम्हारे पिता जी ने तुम्हारे लिए मेरे सिवा और सब खूबसूरत चीज़ों का इन्तज़ाम किया है।

कांता **(जैसे पुरानी बातों को बिल्कुल भूल गई हो)** आप ख़ूबसूरत नहीं हैं ?

रंजन : और क्या।

कांता : **(बड़ी अदा से)** जाइये-जाइये, अपनी तारीफ़ कराना चाहते हैं। आइने में जाकर देखिए, इस नाइट सूट में कैसे जँच रहे हैं।

रंजन : **(एक उदासीन मुस्कान के साथ)** इस नाइट सूट ही में जँचता हूँ, वैसे नहीं जँचता ?

कांता : **(गंभीर होकर)** भई देखिए, आदमी अच्छा होता है, लेकिन कपड़े अच्छे न हों तो इतना अच्छा नहीं लगता।

रंजन : इसके मानी यह हुए कि आदमी की क़द्र न हुई, कपड़ों की हुई ?

कांता : **(एक ऐसे दृढ़ विश्वास से जो कांता के पूरे व्यक्तित्व को ज़ाहिर कर देता है)** लेकिन आप कपड़ों को आदमी से अलग क्यों करते हैं ? दुनिया में जितनी भी ख़ूबसूरत चीज़ें हैं, आदमी के लिए हैं। एक फूल अपनी जगह अकेला भी ख़ूबसूरत होता है। लेकिन जब उसके गिर्द दूसरे फूल चुन दिए जाते हैं तो उसमें पूरे गुलदस्ते की ख़ूबसूरती पैदा हो जाती है। अब गुलदस्ते की तारीफ़ करने के मानी यह तो नहीं हैं कि उस फूल की बुराई की जा रही है ?

रंजन : **(विस्मय से)** कान्ता !

कांता : हाँ, मुझे ख़ूबसूरत कपड़ों से, ख़ूबसूरत बंगलों से, ख़ूबसूरत बातों से-गर्ज़ कि दुनिया भर की ख़ूबसूरत चीज़ों से बेइंतहा प्यार है। मैं तो बस यही चाहती हूँ कि सब तरह की ख़ूबसूरत चीज़ों से घिरी रहूँ। जो लोग मेरे पास हों, वे भी रंग और रूप की झिलमिल में झिल-मिलाते रहें। मैं जागूँ तो मेरे सामने सुन्दर संसार हो; सोऊँ तो सलोने सपने हों।

रंजन : **(विनोद पूर्वक)** और जब न सो रही हो, न जाग रही हो ?

कांता : तब या तो रूप की पौ फट रही हो या साँझ के सलोने धुंधलकों में मधुर स्मृतियों के पंछी बसेरा कर रहे हों।

रंजन : तुम तो सचमुच कवि हो गई हो कांता।

कांता : हाँ रंजन, यहाँ कलकत्ता आकर मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे धरती जो जन्म-जन्म की प्यासी थी, तृप्त हो गई है। अंकुर जो मिट्टी में दबा हुआ था, फूट कर खुली हवा में लहलहा उठा है। टहनी जो बाँझ थीं, कलियों, फूलों और भँवरों के भार से दोहरी हो गई है। आज मुझे दुनिया की हर चीज़ से प्यार करने को जी चाहता है।

रंजन : **(विनोद के स्वर में)** चीज़ में आदमी भी शामिल हैं ?

कांता : **(शोखी से मुस्करा कर)** अरे चलिये, मज़ाक करने पर आयेंगे तो क्या बेहूदा मज़ाक़ करेंगे । ऐसे भी कोई कहता है !

रंजन : लेकिन तुम ही ने तो कहा कि आज सब चीज़ों को प्यार करने को जी चाहता है ।

कांता : **(आँखें नचा कर)** लेकिन तुम्हारे आगे कोई दूसरा आदमी टिक सकेगा ?

रंजन : क्यों ? क्या मुझ से खूबसूरत आदमी इस दुनिया में नहीं हैं ?

कांता : ज़रूर हैं । लेकिन आपको मालूम है जब सूरज चमकता है तो तारे, जो उससे लाख गुना बड़े होते हैं, दिखाई तक नहीं देते ।

रंजन : **(सहसा पुरानी बात याद करके उदास स्वर में)** लेकिन जब सूरज नहीं चमकता, गहना जाता है या छुप जाता है ?

कांता : **(वैसे ही विश्वास से)** तब दूसरे तारे नज़र आने लगते हैं । लेकिन यह देखने वाले की ख़ता नहीं होती, अँधेरे का क़सूर होता है । इसीलिए तो मैं अँधेरा नहीं चाहती । रोशनी ही रोशनी चाहती हूँ ।

[सहसा रमेश प्रवेश करता है । पीछे-पीछे नौकर अटैची केस लेकर आता है और अन्दर चला जाता है ।]

रमेश : नमस्ते भाभी जी, यह रौशनी की फ़िलासफ़ी पर क्या लैक्चर दे रही हैं ?

कांता : ओह आप ?

रंजन : **(खुशी से आगे बढ़ कर)** अरे रमेश, तू आज कैसे आ गया ? तूने तो अगले हफ़्ते आने को लिखा था ?

रमेश : अरे हमारा क्या है । रमते जोगी हैं···

रंजन : **(हँस कर)** अबे हाँ हाँ, बहुत देखे हैं तुझ जैसे जोगी । बैठ यहाँ ।

रमेश : **(रंजन को ग़ौर से देखते हुए)** बैठता हूँ—ज़रा यहाँ आइयो, खिड़की के पास **(खिड़की के पास लेजाकर)** तू यहाँ कलकत्ता

आकर काला नहीं पड़ गया ?

कांता : (**तीव्र प्रतिवाद के स्वर में**) नहीं तो इनका रंग तो यहाँ आकर उल्टा निखर गया है।

रमेश : (**कांता की ओर ग़ौर से देख कर**) मुझे तो कुछ काला ही लग रहा है भाभी। और कुछ कमज़ोर भी नज़र आता है ?

कांता : (**पूर्ण विश्वास से**) फिर तो आपकी नज़र ही का क़सूर है। यहाँ आकर तो इनकी हैल्थ भी बन गई है, और यह पहले से बहुत अच्छे लगने लगे हैं। नहा धोकर जब दफ्तर जाएँगे, तब देखिएगा। इन्होंने एक नया सूट बनवाया है। उसमें कितने अच्छे लगते हैं।

रमेश : क्यों ? बहुत अच्छा सिला है क्या ?

कांता : सिलने की बात नहीं। इनका जिस्म और इनका चेहरा पहले से भर गया है न, इसलिए बेहद फबता है।

रमेश : (**रंजन को सम्बोधित करते हुए**) यह आप जनाब इतने ख़ामोश कैसे हैं ? तारीफ़ हो रही है इसलिए ?

कांता : (**बीच में बोल कर**) यह तारीफ़ की बात नहीं है। मैं तो किसी की भी झूठी तारीफ़ नहीं करती। जो अच्छा लगता है, अच्छा कह देती हूँ। बुरा लगता है, बुरा कह देती हूँ।

रमेश : (**हँसते हुए**) लेकिन इस समय तो आप इसे कुछ कन्सेशन देती मालूम होती हैं।

कांता : क्यों ? क्या आपको इस लिए एतराज़ हो रहा है कि मैं आपकी तारीफ़ नहीं कर रही हूँ ? सुपरिन्टेंडेट साहब, आप भी ख़ासे लग रहे हैं।

रमेश : ख़ासे ? बस ! देखा रंजन ?

रंजन : (**ऐसे स्वर में जिसमें विषाद की झलक स्पष्ट है**) मैं क्या देखूँ भई। मैं तो पत्थर की बट्टी हूँ। किसी ने अपना लिया तो सालिगराम, नहीं तो पत्थर का पत्थर।

रमेश : वाह वाह, आप तो बड़ी फ़लसफ़याना बातें करने लगे हैं।

कांता : अजी आप सुनियेगा। आजकल तो यह बड़ी मज़ेदार बातें करने लगे हैं। ऐसे ब्रिलियेंट फ़िक़रे कहते हैं कि·······

रमेश : (हँसकर) एक हज़ार वाट के मरकरी बल्ब भी मन्द पड़ जाते हैं, क्यों ?

कांता : बहुत खूब (**हँसती है और रंजन भी हँसता है। इसी समय घड़ी में साढ़े आठ बजते हैं। रंजन कूद कर उठ बैठता है।**)

रंजन : अरे इतनी देर हो गई। रमेश, तुम बैठो, आराम करो। मैं जल्दी से नहा-धोकर आया। आज मुझे दफ़्तर साढ़े नौ बजे पहुँच जाना है।

रमेश : कोई बात नहीं, तुम जाओ।

[**रंजन चला जाता है। कान्ता अपने को रमेश के साथ अकेला पाकर विचलित सी हो जाती है। रमेश कुछ देर तक उसकी बेचैनी को देखता है और फिर**······]

रमेश : और सुनाइये भाभी। मुझे आपसे एक शिकायत हमेशा रहेगी।

कांता : (**नजरें मिलाये बग़ैर**) क्या ?

रमेश : आपने कलकत्ता आकर मुझे एक बार भी याद नहीं किया ?

कांता : (**जैसे बात टालते हुए**) आपके दोस्त जो आपको याद करते थे। वह तो·······वह तो हर ख़त में आपको आने के लिए लिखते थे।

रमेश : लेकिन आपने तो एक बार भी नहीं लिखा ना ?

कांता : (**एक क्षण के लिए नज़रें मिला कर**) मैं आपको ख़त लिखती ?

रमेश : (**अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराते हुए**) क्यों ?

कांता : (**घुटे घुटे लहजे में**) आप कैसी बातें करते हैं ?

रमेश : क्यों ? आपको मेरी याद नहीं आई थी ?

कांता : याद ? (**बेचैन होकर उठते हुए**)······अरे मुझे याद आया। मैं तो भूल ही गई कि आप रेल से उतर कर आ रहे हैं।

आपको चाय पीनी है। मैं जाकर चाय भिजवाती हूँ।

रमेश : आप खुद नहीं लाएँगी ?

कांता : मुझे···कुछ काम है।

रमेश : (**सहसा लहजा बदल कर**) कान्ता, तुम्हें मालूम है मैं क्यों आया हूँ ?

कांता : (**तनिक काँप कर**) जी, जी ? हाँ,······क्यों नहीं मालूम। आप अपने दोस्त को देखने······

रमेश : और अगर मैं कहूँ कि तुमको देखने ?

कांता : (**सम्भल कर**) क्या ? आप यह कह रहे हैं ?

रमेश : (**फिर अर्थपूर्ण ढंग से मुस्करा कर**) हाँ, कान्ता मैं रंजन को देखने नहीं, तुमको देखने आया हूँ।

कांता : (**लगभग बिगड़ कर**) देखिए, मुझ से ऐसी बातें न कीजिए।

रमेश : (**और ज्यादा मुस्कराते हुए**) कैसी बातें कान्ता ?

कांता : (**निर्णयात्मक लहजे में**) ऐसी बातें। मेरे दिल में अब आपके लिए कोई जगह नहीं है।

रमेश : (**सहसा खिल कर**) तुमने बहुत सुन्दर कहा कान्ता। मुझे मालूम था तुम यही कहोगी। (**आराम कुर्सी की पुश्त पर सिर टिकाते हुए**) यही बात सुनने के लिए मैं इतनी दूर से यहाँ आया था। (**इतमीनान की बहुत गहरी साँस लेता है।**)

कांता : (**चकरा जाती है**) मैं······मैं आपका मतलब नहीं समझी ?

रमेश : (**अब बड़े शान्त भाव से मुस्कराते ए**) तुम समझ नहीं सकोगी कान्ता, क्योंकि तुम अपने को भी नहीं समझतीं। लेकिन मैं तुमको समझता था। और आज मुझे यक़ीन हो गया कि मैंने तुम्हें ठीक समझा था।

कांता : (**भयभीत होकर**) आप क्या समझते थे ?

रमेश : यही कि तुम बुरी नहीं हो। सिर्फ तुमको अपने से, अपने सपनों से ज़रूरत से ज़्यादा प्यार है।

कांता : अपने से ? सपनों से ?

रमेश : हाँ कान्ता। एक दिन रंजन ने मेरे पास आकर कहा था, तुम उसे प्यार नहीं करतीं, उससे नफ़रत करती हो। उस दिन वह बड़ा निराश था। लेकिन मैंने उसे दिलासा दिया था कि तुम ऐसी नहीं हो। तुम उसके अलावा किसी और आदमी को प्यार नहीं करतीं। हाँ, तुमको अपने सपनों से, जीवन के सुखों से, कुछ ज़रूरत से ज़्यादा प्यार है।

कांता : (**भय से**) आपने उन्हें उस दिन की बात बता दी थी ?

रमेश : मैंने नहीं बताई थी, लेकिन माँ ने सब कुछ सुन लिया था। उनकी ज़बानी······

कांता : (**काँप कर**) उन्हें सब कुछ मालूम हो गया ?

रमेश : हाँ, माँ ने हमारी उस दिन की सब बातें उसे बता दीं।

कांता : (**जैसे विश्वास न करती हो**) लेकिन उन्होंने मुझ से तो कुछ नहीं कहा ?

रमेश : वह कहेगा भी नहीं।

कांता : लेकिन क्यों ? इतना जान कर भी ? यह······यह कैसे हो सकता है। मेरी समझ में नहीं आता ·····

रमेश : बस, इसी समझ में न आने वाली बात पर तो आदमी-आदमी के बीच मुहब्बत की दुनिया का दारोमदार है कान्ता। अगर इन्सान हिसाब-किताब लगा कर मुहब्बत करता, तो वह किसी से मुहब्बत न कर पाता, क्योंकि इस दुनिया में ख़ूब-सूरती की, अच्छाई की, अमीरी की, न कोई इन्तहा है और न गारन्टी। यहाँ एक से एक अच्छा है, एक से एक ख़ूबसूरत है, एक से एक अमीर है। और एक घड़ी जो अच्छा है, ख़ूबसूरत है, अमीर है, दूसरी घड़ी वह बुरा, बदसूरत और बेसरमाया बन जाता है। अगर इस कारण तुम बार-बार प्यार की कीलियाँ बदलती रहोगी, एक डाल छोड़ कर दूसरी की ओर उड़ती

फिरोगी, तो घोंसला कभी, कहीं भी न बना सकोगी कान्ता ।

कांता : **(प्रभावित होकर)** रमेश जी !

रमेश : हाँ कान्ता……सब इन्सान गरदिश में हैं । वे चाँद की तरह घटते-बढ़ते रहते हैं । तुम भी चाँद की तरह घटती-बढ़ती रहोगी । अगर तुम एक इन्सान से सिर्फ़ इस लिए निराश हो जाओगी कि आज उसकी रोशनी मन्द पड़ गई है, आज वह गहना गया है, तो तुम अपने लिए उससे किस व्यवहार की आशा करोगी ? किसी ऊँचे आदर्श की बात न करो, कोरे व्यवहार की इस वास्तविकता पर ध्यान दो कि रोशनी के गहन के विधान से तुम भी मुक्त नहीं हो । एक दिन तुमको भी अन्धकार के विकराल गहन से गुज़रना पड़ सकता है ।

कांता : **(अपनी भूल जान कर क्षमा याचना के स्वर में)**—रमेश जी !

रमेश : हाँ भाभी । गहन से नफ़रत अवश्य करो, पर उस इन्सान को अपने प्यार से हरगिज़ वंचित न करो जो गहन की लपेट में आ गया है, क्योंकि गहन इन्सान का भाग्य नहीं है, भाग्य के चक्र का एक गुज़रता हुआ क्षण है ।

अंधेरा उजाला

पात्र

सुरेन्द्र	:	एक गंभीर व्यक्ति
शान्ति	:	उसकी जाहिल झगड़ालू पत्नी
बेटा	:	सुरेन्द्र का चार वर्षीय पुत्र
बुढ़िया	:	सुरेन्द्र की पुरानी धाय
माँ	:	सुरेन्द्र की स्वर्गीया माँ
बाप	:	सुरेन्द्र के स्वर्गीय पिता
नौकर	:	सुरेन्द्र का नौकर
कंजर	:	पड़ौस मे रहने वाला एक कंजर

[रात का समय। कमरे में सुरेन्द्र और उसका ४ वर्षीय पुत्र हैं]

सुरेन्द्र : अच्छा बेटे, और क्या लोगे ?

बेटा : **(सोचते हुए)** और ?

सुरेन्द्र : हाँ।

बेटा : मोटर गाड़ी।

सुरेन्द्र : हाँ भई हाँ। मोटर गाड़ी के बिना कैसे काम चलेगा। हम तुम्हें मोटर गाड़ी ज़रूर लाकर देंगे। चाबी से चलने वाली मोटर लोगे न ?

बेटा : हाँ, वह जो अपने आप चलती है। और पानी में चलने वाला जहाज़ भी।

सुरेन्द्र : अच्छा, तुम्हारा मतलब स्टीमर से है जो पानी में चलता है और धूआँ भी निकालता है ?

बेटा : हाँ हाँ, वही। और छुक छुक चलने वाली रेल गाड़ी भी।

सुरेन्द्र : हम अपने बेटे को सब कुछ लाकर देंगे। कल सुबह चलोगे न हमारे साथ बाज़ार ?

बेटा : हाँ। अम्मां को भी साथ ले चलोगे न ?

सुरेन्द्र : **(सहसा स्वर बदल जाता है। कंठ में एक स्पष्ट कठोरता और गंभीरता आ जाती है)** देखो बेटे, तुम्हारी माँ तुम्हें मारती है। आज सुबह भी मारा था तुम्हें !

बेटा : **(याद नहीं आता)** कब ?

सुरेन्द्र : जब तुमने प्याला तोड़ा था।

बेटा : हाँ हाँ ! **(मुँह फुला कर)** मैं माँ से नहीं बोलूँगा।

सुरेन्द्र : बिल्कुल न बोलना। और सुनो बेटे **(बहुत सँभल सँभल कर)** अगर हम तुम्हें कोई और अच्छी-सी माँ ला दें तो ?

बेटा : **(चौंक कर)** और माँ ?

सुरेन्द्र : **(बहलाने के लहजे में)** हाँ बेटे। नई, बहुत अच्छी माँ, जो तुम्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए और मिठाइयाँ खिलाए।

बेटा : और कभी न मारे ?

सुरेन्द्र : हाँ ! कभी न मारे; हमेशा बड़े प्यार से रखे।

[बच्चा चुप रहता है, उत्तर नहीं देता]

सुरेन्द्र : तो बेटा हम ले आएँ तुम्हारे लिए एक नई माँ ?

बेटा : **(सहसा)** पिता जी।

सुरेन्द्र : क्या हुआ बेटा ?

बेटा : **(विकल होकर)** मैं माँ के पास जाऊँगा।

सुरेन्द्र : माँ के पास ? तुम तो कहते कि माँ से नहीं बोलोगे।

बेटा : नहीं, मैं तो माँ के पास सोऊँगा।

सुरेन्द्र : नहीं बेटे ! माँ के पास मत जाओ !

बेटा : नहीं, मैं तो माँ के पास जाऊँगा। मैं तो···

सुरेन्द्र : **(क्रोध आने लगता है)** फिर वही ज़िद ? हमने कह दिया है तुम माँ के पास नहीं जाओगे। वह ख़राब है।

बेटा : नहीं। मैं तो माँ के पास जाऊँगा।

[जाने के लिए मचलता है]

सुरेन्द्र : **(क्रोध से)** देखो पम्मी, हम तुम्हारे चपत रसीद कर देंगे।

बेटा : नहीं, नहीं, मैं तो···मैं तो···

[और ज्यादा मचल उठता है और रोने लगता है]

सुरेन्द्र : **(अपने पर क़ाबू पाते हुए और उसे पुचकारते हुए)** देखो बेटे, हम क्या तुम्हें मारते हैं ? डाँटते फटकारते हैं ? हम तुम्हें अच्छी-अच्छी चीज़ें लाकर देंगे। तुम्हें घुमाने ले जाएंगे। बस, हमारे पास रह जाओ। हमारे साथ लेट जाओ।

बेटा : नहीं-नहीं (**जाने के लिए उठ खड़ा होता है**) नहीं-नहीं, मैं तो जाऊँगा।

सुरेन्द्र : (**डाँट कर**) पम्मी। यहीं बैठो (**बाँह पकड़ कर खींचता है। पम्मी चिल्ला पड़ता है।**)

बेटा : माँ, माँ।

सुरेन्द्र : (**चिल्ला कर**) खबरदार जो माँ को आवाज़ दी। चुप पड़ा रह यहीं।

बेटा : (**ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाता है**) ओ माँ! ओ माँ!

सुरेन्द्र : (**घुड़की देते हुए**) चुप नहीं होगा? चुप हो जा वरना उठा कर पटक दूँगा।

बेटा : (**इस बार पूरी आवाज़ से चिल्ला कर**) अम्माँ, अम्माँ!

सुरेन्द्र : (**क्रोध से बेक़ाबू हो जाता है**) बाज़ नहीं आएगा? तो ले। (**एक चाँटा लगाता है। वह चाँटे लगाता जाता है और बच्चा ज्यादा ज़ोर से रोता और माँ को पुकारता जाता है। बच्चे का रोना सुनकर शांति, सुरेन्द्र की पत्नी, दौड़ी अन्दर आती है**)

शांति : छोड़ो मेरे बच्चे को।

बेटा : अम्माँ!

[**पम्मी उसकी ओर दौड़ता है। वह आगे बढ़ कर अपनी बाहों में ले लेती है**]

शांति : मेरे बेटे।

सुरेन्द्र : (**एक हाथ से बच्चे को खींचता है और दूसरे से शान्ति को धकेल कर**) अलग हट जाओ। तुम्हारा इस बच्चे से कोई ताल्लुक़ नहीं।

शांति : (**चीख़ कर**) कौन कहता है? कौन होते हो तुम मेरे बेटे को मुझ से छीनने वाले?

सुरेन्द्र : (**कठोर स्वर में**) शांति, बच्चे को हाथ लगाने की कोशिश न

करो। कमरे से निकल जाओ।

शांति : वाह वाह ! तुम समझते हो मैं इतनी आसानी से टल जाऊँगी। या तो मेरा बेटा मुझे दे दो वरना यहीं छाती पर बैठी मूँग दलूँगी।

सुरेन्द्र : बच्चा मेरे पास रहेगा और तुमको इस घर से जाना होगा।

शांति : देखूँ तो वह किस का माँ जन्मा है जो मुझे इस घर से निकालेगा।

सुरेन्द्र : तुम यहाँ से नहीं जाओगी ?

शांति : मेरी जूती भी इस घर में रहना नहीं चाहती। पर मैं अपने बेटे को छोड़कर कभी नहीं जाऊँगी।

सुरेन्द्र : तो तुम बातों से नहीं मानोगी ?

शांति : तुम मुझे लातों की धमकी देते हो ? पर सुन लो, मैं नहीं डरती हूँ इनसे। इस भरम में मत रहना। मैं उस माँ की बेटी हूँ जिसने सारी उम्र मेरे बाप के लात धमूके खाये, पर बात सदा अपनी ही सवा रखी।

सुरेन्द्र : (**घृणा से**) और तुम भी यही चाहती हो कि तुम्हारी भी वही दुर्गत बनाई जाए जो तुम्हारी माँ की बनी ?

शांति : मेरी माँ की क्या दुर्गत बनी ? मेरी माँ ने कभी हार नहीं मानी। एक की दस सुनाईं और बट्टे का जवाब सिल से दिया।

सुरेन्द्र : (**कटुता से**) बहुत अच्छा किया था तुम्हारी माँ ने। और तुमने भी बहुत अच्छा सबक़ लिया उन से। तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है ?

शांति : पत्थर पड़ गए हैं।

सुरेन्द्र : वाक़ई तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं, वरना कोई औरत अपनी जिन्दगी यूँ तबाह नहीं कर सकती।

शांति : मेरी कोई क्या जिन्दगी तबाह करेगा ? और कर भी दे, पर मैं किसी की सुन कर नहीं रहूँगी। मैं अपनी नाक पर मक्खी

बैठने नहीं दूँगी।

सुरेन्द्र : तुम्हारी नाक बहुत लम्बी है न ?

शांति : लम्बी नहीं तो क्या छोटी है ? मेरे माँ बाप ने ब्याह में क्या कुछ नहीं दिया ? जितना धन तुम पे लुटाया है, उतना किसी और पे लुटाते तो वह सारी उम्र मेरे पैर धो-धोकर पीता।

सुरेन्द्र : इसी ख़्याल ने तो तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर दिया है। तुम्हारा दिमाग़ जहालत का घरौंदा है जिसके पास अक़्ल आकर भी नहीं फटकती। कभी तुमने अपनी सूरत देखी है ? अपने बदनुमा और मनहूस चेहरे पर चेचक के इन मोटे-मोटे दाग़ों को देखा है, जिन्होंने तुम्हें ऐसी चीज़ बना दिया है जिसे अंधेरे में देखते ही मुँह से चीख़ निकल जाती है ? दुआ दो मेरी उस सौतेली माँ को, जिसने जान-बूझकर और मुझे धोखे में रख कर मेरी शादी तुम से कर दी।

शांति : तो कोई ऐहसान नहीं किया था तुम्हारी सौतेली माँ ने। देखने गई थी तो चुप से मेरे बाप से पाँच हजार रुपये लेकर थैली में रख लिए थे। तब कहीं थोबड़े से मुँह से 'हाँ' की थी।

सुरेन्द्र : यह मुझे मालूम है कि मैं बेचा गया था। तुम्हारे बाप ने पाँच हज़ार मेरी सौतेली माँ को देकर मुझे ठगा था।

शांति : तुम्हें ठगा था ? शादी में बड़े हीरे मोती के ज़ेवर चढ़ाए थे न, जो मेरे बाप ने घर में रख लिए ?

सुरेन्द्र : तुम्हारी नज़रों में पत्थरों ही की क़ीमत है। तुम ज़ेवरों की भूखी हो। तुम आदमी को नहीं, पत्थरों को पूजती हो। प्यार की, शराफ़त की तुम्हारी नज़र में कोई क़द्र नहीं। ज़िन्दगी को हँसी और खुशी से सजाना तुमने सीखा नहीं।

शांति : मैं रीती थोथी मुहब्बत की क़ायल नहीं हूँ। तुम समझते हो कि मैं गँवार हूँ, कुछ समझती नहीं। पर मैं सब कुछ समझती हूँ। मैंने ऊँट की नाक में नकेल डालना सीखा है।

सुरेन्द्र : तुमने बस जाहिल औरतों के ऊटपटाँग मुहावरे दोहराना और हर वक्त खाऊँ फाड़ूँ करते रहना सीखा है। तुम्हारे दिमाग़ में एक ख़ारिश सी उठती रहती है। बिना झगड़ा किए तुम्हें शान्ति नहीं मिलती। मार-पीट और गाली-गलौच का चस्का तुम्हें एक घड़ी चैन नहीं लेने देता।

शांति : हाँ ! मुझ में तो दुनियाँ भर के ऐब हैं। कोई दूसरी हूर की परी या सिंहल द्वीप की सुन्दरी ब्याह कर ले आओ।

सुरेन्द्र : (**आहत होकर**) यह कहते हुए तुम्हें कुछ नहीं लगता ?

शांति : मुझे क्या लगता ? सौत लाओगे, मेरी जूती से।

सुरेन्द्र : और इस घर से भी निकल जाने का ग़म न होगा ?

शांति : ग़म ? तो तुम समझते हो मैं गिड़गिड़ाऊँगी ? पाँव पड़ूँगी ? अरे गौरा रूठेगी सुहाग लेगी, भाग तो न लेगी।

सुरेन्द्र : (**हताश और निरुत्तर होकर**) तुम यक़ीनन पागल हो चुकी हो।

शांति : पागल क्या, मैं तो डायन हो चुकी हूँ। तुम अपनी खै़र मनाओ।

सुरेन्द्र : अपनी खै़र मनाने के लिए ही अब मुझे दूसरी शादी करनी पड़ेगी।

शांति : यह कौन सी नई बात बता रहे हो। दूसरा व्याह रचाने का चाव तो मर्दों की घुट्टी में पड़ा होता है। तुम छः साल तक कैसे यह चाव दबाए रहे और अपना मन मारे बैठे रहे ?

सुरेन्द्र : (**चिल्ला कर**) शान्ति !

शांति : सच्ची बात सुनकर पतँगे लग गये ?

सुरेन्द्र : शान्ति चुप हो जाओ, वरना······

शांति : वरना क्या मुझ पर हाथ उठाओगे ? उठाओ हाथ और निकाल लो अपने मन का यह अरमान भी। मेरी मिट्टी की काया नहीं है। मेरी माँ ने घी और बादाम खिला-खिला

कर लोहा किया हुआ है इसे।

सुरेन्द्र : (**घृणा से**) और इस लिए कि डंडे टूट जाएँ पर तुम में लचक न आए ? तुम सचमुच औरत नहीं हो, औरत के रूप में जानवर हो।

शांति : पर ऐसा जानवर नहीं जिसे तुम सीधा कर लो। वह दूध तुम्हारी माँ ने तुम्हें नहीं पिलाया।

सुरेन्द्र : (**चिल्ला कर**) शान्ति, मेरी आँखों के आगे से दूर हो जाओ। मेरे कमरे से निकल जाओ।

शांति : नहीं जाती। मैं तो यहीं बैठूंगी अदला जमा कर।

सुरेन्द्र : तो तुम बैठो, मैं निकले जाता हूँ। जिस घर में तुम हो, उस में मेरा रहना नामुमकिन है। तुम्हारी सूरत और तुम्हारी सीरत के ज़हर की, मैं ताब नहीं ला सकता।

[**बाहर चला जाता है**]

[**संगीत ध्वनि**]

× × ×

[**घड़ी टन-टन नौ बजाती है। सुरेन्द्र अपने नौकर माधव को पुकारता है।**)

सुरेन्द्र : माधो ! माधो ! कहाँ मर गया ?

माधो : (**दूर से**) आया साहब !

सुरेन्द्र : साहब के बच्चे, मैं इतनी देर से चिल्ला रहा हूँ। कहाँ था तू ?

माधो : जी, बीबी जी ने मुझे अनाज साफ़ करने के लिए बिठा दिया था।

सुरेन्द्र : अबे यह अनाज साफ़ करने का वक्त है। मेरे कपड़ों पर लोहा कर दिया ?

माधो : जी, बीबी जी ने उन्हें धोने ही कहाँ दिया रात। मुझे बाज़ार भेज दिया था।

सुरेन्द्र : तो मुझे रात ही क्यों न बता दिया कि मैं खुद धो लेता ?

धोबी वैसे ही आकर नहीं मरा। अब मैं तेरी खाल पहन कर कचेहरी जाऊँ ? बुलाओ बीबी जी को।

माधो : वे छोटे बाबू को नहला रही हैं।

सुरेन्द्र : और आया क्या मर गई, जो वे खुद नहला रही हैं ? और मेरा नाश्ता ?

माधो : वह आया तैयार कर रही है।

सुरेन्द्र : आया ? मेरे बार-बार मना करने पर भी कि मेरा नाश्ता वह ग़लीज़ आया तैयार न किया करे ? निकल जाओ यहाँ से, दूर हट जाओ। (**प्लेट के टूटने की आवाज़ आती है**)।

सुरेन्द्र : यह क्या टूटा ?

माधो : देखता हूँ साहब। शायद आया ने आपका नया टी सैट तोड़ दिया है।

सुरेन्द्र : ओह ! यह घर नहीं, जहन्नुम है। यहाँ एक घड़ी के लिए मुझे शान्ति नसीब नहीं हो सकती।

(एक कंजर दाखिल होता है)

कंजर : हजूर।

सुरेन्द्र : कौन ? कौन हो तुम ?

कंजर : हम कंजर हैं हजूर। आपकी कोठी के पीछे झोंपड़ी डाले पड़े हैं। बान और सिरकियाँ बनाते हैं।

सुरेन्द्र : तो क्या चाहते हो ?

कंजर : हजूर माई बाप हैं। बड़े आदमी हैं। हम आपकी रैयत हैं।

सुरेन्द्र : देखो, मेरे पास यह बकवास सुनने के लिए वक्त नहीं है। साफ़-साफ़ कहो, क्या चाहते हो ?

कंजर : हजूर क्या बताऊँ ? यह औरत की जात बड़ी बदजात होती है। मर्द की गर्दन कटवाये बिना नहीं रहती।

सुरेन्द्र : तुम सीधी-सीधी बातें करते हो या नौकर को बुलवाऊँ ?

कंजर : नहीं नहीं हुज़ूर, हम तो आपके तावेदार हैं। आपका दिया खाते हैं। पर इस बदजात औरत से पार नहीं बसाती। इसके डर के मारे आपके पास आना पड़ा।

सुरेन्द्र : साफ़-साफ़ बात नहीं बताओगे ?

कंजर : बताऊँगा हुज़ूर। बताने ही तो आया हूँ। पर इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। मेरी औरत ही बड़ी हरामजादी है। कहती है आपके छोटे बाबू और मेम साहब······

सुरेन्द्र : (**चौंक कर**) क्या ? उन्होंने क्या किया ?

कंजर : कुछ नहीं हुज़ूर। बात यह है कि छोटे बाबू हमारी बकरियों को पकड़ कर ले आते हैं, उनको मारते हैं और उनका दूध निकालते हैं। हमारे बच्चे रोकते हैं तो आपकी मेम साहब नौकर के हाथों उल्टा उन्हीं को पिटवाती हैं। कल हमारा बदजात औरत आपकी मेम साहब से लड़ने निकल आया। खूब बदजबानी किया। हमने उसे मारा, चुटिया पकड़ कर खींचा, पर वह एक ही बदजात है। कहती है कि अबके मेरी बकरी पकड़ी तो हाथ तोड़ डालूँगी। कल मेम साहब उसे मारने चढ़ आया। हमने बड़ी मुश्किल से रोका। मेम साहब से माफी माँगी, पर उन्होंने हमारी झोंपड़ी में आग लगवा देने को कहा। सरकार यह हमारा औरत हमारी गर्दन कटवा के रहेगा। पर हम उसे नहीं रोक सकता। इस लिए हुज़ूर के पास आया है।

सुरेन्द्र : तो क्या हमारा लड़का कई बार ऐसा कर चुका है ?

कंजर : जी सरकार, पर······

सुरेन्द्र : और हमारे नौकर ने तुम्हारे बच्चों को मारा ?

कंजर : हाँ, मगर वह इसी लायक हैं······

सुरेन्द्र : और कल मेम साहब तुम्हारी औरत से लड़ने गया ?

कंजर : हुज़ूर हमारी औरत निरी बदजात औरत है साहब।

सुरेंद्र : तुम जाओ। अब से ऐसा कभी नहीं होगा। तुम्हें कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया जाएगा।

कंजर : सरकार ही हमारे माई बाप हैं।

सुरेन्द्र : अच्छा, बस बस। अब जाओ। हाँ ठहरो, लो ये पाँच रुपये का नोट। यह तुम्हारी बकरियों के दूध की कीमत है।

कंजर : नहीं नहीं, सरकार।

सुरेन्द्र : नहीं नहीं न करो। लो यह नोट और फ़ौरन दफा हो जाओ।

कंजर : भगवान हुजूर की उम्र बढ़ाये, तरक्की दे।

[**कंजर चला जाता है। शान्ति आती है**]

शांति : कौन आया था है ?

सुरेन्द्र : (**घृणा से**) वह कंजर जिसकी औरत से लड़ कर कल तुमने मेरी और अपनी इज्ज़त में ख़ाक डलवाई।

शांति : वह मेरी इज्ज़त में क्या ख़ाक डालेगी ? कमजात अपने को बड़ी ज़बानज़ोर और हाथ पैर वाली समझती है। मैंने भी वो सुनाई और चुटिया पकड़ कर वह घसीटा......।

सुरेन्द्र : (**व्यंग पूर्वक**) वाह वाह, तुमने कितना मार्के का काम किया ? अपने और मेरे नाम को चार चांद लगाये ? आस-पास की कोठियों में रहने वालों ने तुम को इस कंजर की औरत से गाली गुफ़तार और जूत पैज़ार करते देखा होगा तो क्या सराहा होगा ? क्या बलाएँ ली होंगी ?

शांति : मुझे नहीं ज़रूरत है उनके सराहने की और बलाएँ लेने की।

सुरेन्द्र : (**सख़्त हो कर**) यह मैं जानता हूँ। लेकिन मुझे इज्ज़त की ज़रूरत है। मैं अब तुम्हें अपनी इज्ज़त तबाह नहीं करने दूँगा।

शांति : मैं तुम्हारी इज्ज़त तबाह करती हूँ ?

सुरेन्द्र : तुम्हें इसमें शुबा है ? तुम मेरे लिए जितनी शर्मिन्दगी और

बेइज़्ज़ती का कारण बनी हुई हो, मैं बता नहीं सकता। मेरी इज़्ज़त खराब करने में तुमने कौन सी कसर उठा रखी है। तुमने मुझे मेरे तमाम दोस्तों के सामने और उनके घरों में लड़ झगड़ कर ज़लील किया है। तुमने मेरे यहाँ आने वाले हर मेहमान को अपनी बदमिज़ाजी और बदतमीज़ी का शिकार बनाया है। तुमने मेरे मना करने पर भी चुपचाप उन लोगों की डालियाँ और तोहफ़े क़बूल किये हैं, जो रिश्वत देकर मुझसे काम कराना चाहते थे। नौकर, धोबी, दूध वाले, सब्जी वाले, रद्दी वाले इनके के मुँह लगना तुम ने अपना पेशा बना लिया है। क्या दुनियाँ की नज़र में मुझे ज़लील बनाने के लिए यह सब कुछ कम हैं?

शांति : तुम होते होगे इन बातों से ज़लील। मैं नहीं होती। मैं तो ऐसे ही करुँगी।

सुरेन्द्र : (**क्रोध से**) क्या कहा?

शांति : (**एक मूर्खता पूर्ण ज़िद्द के साथ**) मैं तो ऐसे ही करूँगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता।

सुरेन्द्र : तुम बाज़ नहीं आओगी?

शांति : नहीं।

सुरेन्द्र : (**चिल्लाकर**) शान्ति!

शांति : मुझे डराते हो? जिस बात की बार-बार धमकी देते हो मैं उससे नहीं डरती। रचा लो दूसरा ब्याह।

सुरेन्द्र : शान्ति। मुझे गुस्सा न दिलाओ।

शांति : क्यों? क्या धरती उलट कर रख दोगे?

सुरेन्द्र : (**क्रोध से पागल हो जाता है**) माधो! माधो! इस औरत को मेरे सामने से हटा दो। इसे मेरे सामने से ले जाओ। मैं इस का खून कर डालूँगा।

[**माधो भागता-भागता आता है। उसे नहीं मालूम क्या**

हुआ है।]

माधो : साहब ! साहब क्या हुआ ? किस औरत को हटाऊँ ?

सुरेन्द्र : (**होश में आते हुए**) ओह तुम। जाओ। जाओ। (**चिल्लाकर**) चले जाओ।

माधो : (**भय से काँपता हुआ**) बहुत अच्छा साहब, बहुत अच्छा।

[**नौकर चला जाता है।**]

शांति : क्यों भेज दिया उसे ? मुझे निकलवाओ न ? मेरा खून करवाओ न ?

सुरेन्द्र : शान्ति ! मैं तुम्हें वह सज़ा दूँगा कि तुम सारी ज़िन्दगी रोती फिरोगी। जिस बात का फैसला मैं न कर पा रहा था, आज तुमने करा दिया। आज से तुम मेरी बीवी नहीं हो। आज शाम तक तुम को यह घर छोड़ना होगा।

शांति : छोड़ दूँगी ! यहाँ मेरी जूती भी नहीं रहना चाहती।

सुरेन्द्र : मगर तुम पम्मी को साथ न ले जा सकोगी।

शांति : क्यों ? मेरे पम्मी को मुझसे कौन छीन सकता है ! कोई नहीं छीन सकता।

सुरेन्द्र : वह तुम्हारा नहीं है, क्योंकि तुम अब मेरी नहीं हो।

शांति : मैं अपने पम्मी को छोड़कर नहीं, कभी नहीं जाऊँगी।

सुरेन्द्र : तो ज़बरदस्ती उसे ले जा कर मैं किसी ऐसे नरसरी या स्कूल में छोड़ आऊँगा जहाँ तुम कभी न पहुँच सको।

शांति : (**बिफर कर**) ऐसा कभी नहीं हो सकता। देखूँ तो कौन मुझ से मेरे बेटे को जुदा करता है।

सुरेन्द्र : (**पूरे जोर से**) मैं करूँगा और आज शाम तक करूँगा। मुझे पम्मी की क़सम है।

शांति : (**भयभीत हो कर**) नहीं नहीं ! मेरे पम्मी की क़सम न खाओ। मेरे पम्मी की क़सम न खाओ।

सुरेन्द्र : मैंने पम्मी की क़सम खा ली है। आज शाम के बाद तुम उस

की माँ न रहोगी।

[**चला जाता है।**]

× × ×

[**सुरेन्द्र बस स्टैंड पर खड़ा बस की प्रतिक्षा कर रहा है। एक बूढ़ी स्त्री आकर उससे बातें करती है।**]

बुढ़िया : बेटा, नई बस्ती को बस यहीं से जाती है।

सुरेन्द्र : (**चौंककर**) हूँ ! हूँ।

बुढ़िया : कितनी देर में आयेगी ?

सुरेन्द्र : (**बे-दिली से**) अभी आजायगी।

बुढ़िया : तू भी नई बस्ती जाएगा ?

सुरेन्द्र : (**झुंझलाकर**) नहीं।

बुढ़िया : गौतमपुरे जायेगा ?

सुरेन्द्र : (**और झुँझला कर**) नहीं ?

बुढ़िया : तो बेलन गंज जायेगा ?

सुरेन्द्र : (**अपना सयंम खोकर**) मैं कहीं नहीं जा रहा, मुझे कहीं नहीं जाना। मेरे पीछे पंजे झाड़ कर क्यों पड़ गई हो ?

बुढ़िया : (**उसको पहचानते हुए**) कौन ? तू ? मेरे बेटे ? तू मेरा सुरेन्द्र तो नहीं है ?

सुरेन्द्र : (**हैरान होकर**) क्या ? क्या ?

बुढ़िया : यह तेरे माथे का निशान मैंने क्यों नहीं देखा ? हाय, में वारी जाऊँ। तू सुरेन्द्र ही है न ? हीरा लाल का बेटा ?

सुरेन्द्र : (**बौखला कर**) हाँ, हाँ, पर पर तुम कौन हो ?

बुढ़िया : (**अपनी ही धुन में**) आँख धोका दे जाए पर आत्मा तो धोका नहीं देती। देखते ही मेरी आत्मा ने कहा—यही है तेरा बेटा यही है। मेरे बेटे, धाय माँ भी तो आधी माँ होवे है।

सुरेन्द्र : (**और हैरान होकर**) धाय माँ ?

बुढ़िया : तू मुझे नहीं पहिचानता। पर मैं तो तेरे माथे का यह निशान

देखते ही पहिचान गई कि तू मेरा सुरेन्द्र है। हाय, उस दिन तेरी सौतेली माँ ने तुझे कैसा धक्का दिया था। उसने तो तुझे अपनी तरफ़ से मार दिया था। पर किसी बड़े लोग का कहना है—जाको राम राखा, वाको किसने चाखा। ऊपर से गिरने पर भी बचा लिया तुझे—बस यहाँ माथे पर धट्टा खुल गया।

सुरेन्द्र : तुम···तुम क्या कह रही हो ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।

बुढ़िया : तेरी समझ में क्या आयेगा बेटा। तू तो तीन साल ही का था जब तेरे बाप ने मुझे हटा दिया था। तुझे क्या याद होगा। आज जो मैं अपने बेटे के पास इस शहर में न आई होती, तो भला तू आज मुझे कैसे जान पाता ?

सुरेन्द्र : क्या, क्या तुम बचपन में मेरी धाय माँ थी ?

बुढ़िया : हाँ बेटा ! न तेरी दुखियारी माँ पर बिपता पड़ती, न मैं तेरी धाय माँ बनती। हाय, कैसी फूट-फूट कर रोती थी वह दुखियारी, तुझे गोद में लेकर।

सुरेन्द्र : **(उदास लहजे में)** वह मुझे बहुत छोटा छोड़ कर चल बसी थीं।

बुढ़िया : चल बसी थी ? अरे यों क्यों नहीं कहता उसे तेरे दुष्ट बाप ने मार डाला ?

सुरेन्द्र : **(चौंक कर)** क्या ? मेरे बाप ने मार डाला ? क्या कह रही हो ?

बुढ़िया : उसने नहीं मारा तो वह उस दिन के बाद फिर क्यों नहीं आई ?

सुरेन्द्र : किस दिन के बाद ?

बुढ़िया : जिस दिन तेरे बाप ने उसे ज़ीने से धकेल दिया था और उसका सिर फट गया था ?

सुरेन्द्र : यह सब कुछ तुम क्या कह रही हो ? तुम पागल तो नहीं हो ?

बुढ़िया: अरे मुझे कौन पागल बनायेगा । मैंने तो सब कुछ अपनी आँखों से देखा था ।

सुरेन्द्र : तुमने क्या देखा था ?

बुढ़िया : कि तेरा बाप उसे ज़ीने के नीचे से उठा कर कार में डाल कर ले गया था ।

सुरेन्द्र : कहाँ ?

बुढ़िया : कहाँ ले गया होगा, नदी पर ले गया होगा । उन दिनों नदी में कुछ कम बाढ़ आई हुई थी ? उसी में फेंक दिया होगा । जहाँ सैकड़ों उसमें बह कर मर गये, वहाँ वह भी मर-खप गई होगी ।

सुरेन्द्र : **(भावनाओं के वेग से काँपते हुए)** धाय माँ, यह तुम क्या बता रही हो ? क्या सुना रही हो ? क्या यह सच है ? धाय माँ, तुम वहाँ चलो, वहाँ पेड़ों के तले । वहाँ बैठ कर मुझे बताओ मेरी माँ पर क्या बीती ।

बुढ़िया : चल बेटा, वहीं चल । **(चलते हुए)** हाय तेरी माँ, भगवान् बैरी को भी ऐसा दुख न दे, जैसे उसे दिये ।

सुरेन्द्र : धाय माँ मुझे यहाँ कुछ न बताओ । वहाँ उन पेड़ों के नीचे बैठकर बताओ । **(विराम)** आओ आओ, हाँ, यहाँ बैठ जाओ । बैठ जाओ । अब मुझे बताओ मेरी माँ पर क्या बीती ?

बुढ़िया : बेटा मुझे कुछ नहीं मालूम था । तेरे बाप ने मुझे तेरे पालने के लिए रक्खा । उसने मुझे बताया कि तेरी माँ तुझे छः महीने का छोड़ कर मर गई है और तेरे बाप ने दूसरी शादी कर ली है । मैं तुझे पालती थी । तेरी सौतेली माँ आँख उठाकर भी तुझे न देखती थी । तू मेरे ही पास सोता था । लेकिन एक रात जब मैं कमरे में अकेली सो रही थी

यकायक किसी ने आकर मेरा गला दबोच लिया ।

[फ़्लैश बैक शुरू—सुरेन्द्र की माँ के जीवन की झलक]

बुढ़िया : (भय से चिल्ला कर गला छुड़ाते हुए) कौन है ? कौन हो तुम ?

सुरेन्द्र की माँ : तेरी मौत ।

बुढ़िया : मेरी मौत ? मेरा गला छोड़ो । मेरा दम घुटा जा रहा है ।

माँ : मैं तेरा दम घूँट कर ही रहूँगी । नागिन, बता मेरा बच्चा कहाँ है ?

बुढ़िया : तुम्हारा बच्चा ?

माँ : हाँ, मेरा बच्चा । मुझे नहीं पहिचानती ? मैं तेरी सौत हूँ । तेरा ख़ून पी जाऊँगी ।

बुढ़िया : (कराहते हुए) मेरी सौत ? पर मेरा आदमी तो कभी का मर गया । मैं तो यहाँ धाय हूँ ।

माँ : क्या ? धाय ?

बुढ़िया : हाँ, मेरा गला छोड़ दो ।

माँ : तू इस घर की नई बहू नहीं है ?

बुढ़िया : नहीं, वह तो ऊपर है मालिक के पास ।

माँ : ओह, मैं तुझे छोड़ दूँगी पर मुझे बता मेरा बच्चा कहाँ है, मेरा सुरेन्द्र ।

बुढ़िया : तुम्हारा बच्चा सुरेन्द्र ? पर उसकी माँ तो मर गई ।

माँ : तो उसने मुझे मरी बताया है ?

बुढ़िया : क्या ? क्या···तुम सचमुच सुरेन्द्र की माँ हो ?

माँ : हाँ । उसने मुझे घर से निकाल दिया । ज़बरदस्ती मेरा बच्चा छीन लिया और चुपचाप यहाँ भाग आया । पर मेरा बच्चा कहाँ है ?

बुढ़िया : कोने में, चारपाई पर ।

माँ : कहाँ ? बत्ती जला दो ।

बुढ़िया : (**भयभीत होकर**) नहीं, नहीं। रोशनी देख कर कोई आ जाएगा। ज़रा ठहर जाओ, तुम्हें अँधेरे ही में दीखने लगेगा।

माँ : नहीं, नहीं। मैं नहीं ठहर सकती। मेरा बच्चा, मेरा लाल।

बुढ़िया : तो आओ, मुझे हाथ दो, चली आओ······यह है तुम्हारा बच्चा।

माँ : हाय, मेरे लाल, मेरे चाँद, मेरी आँखों के तारे। हाय मैं मर जाऊँ। मेरी उम्र लग जाये तुझे।

बुढ़िया : आहिस्ता-आहिस्ता बोलो, कोई सुन लेगा।

माँ : सुनने दो। मेरा लाल मुझे मिल गया। मैं जाती हूँ।

बुढ़िया : अरे यह क्या ? कहाँ जाती हो ?

माँ : मुझे जाने दो। मुझे मत रोको। मैं अपने बच्चे को लिए जा रही हूँ।

बुढ़िया : मैंने बच्चा बता दिया तो तुम मेरा सिर कटवाने चली हो ? तुम बच्चे को नहीं ले जा सकतीं। बच्चे को बिस्तर पर सुला दो।

माँ : नहीं, मैं अब इसे बिस्तर पर नहीं सुलाऊँगी। इस घर में नहीं रहने दूँगी। मैं इसे अपनी छाती से नहीं हटाऊँगी। मुझे जाने दो।

बुढ़िया : तुम नहीं रुकोगी ?

माँ : नहीं, मुझे छोड़ दो। नहीं तो मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगी। खून पी जाऊँगी।

बुढ़िया : अच्छा यह बात है। तो ठहरो। मैं चिल्लाकर अभी मालिक को बुलाती हूँ।

माँ : मालिक को ? (**भयभीत हो**) नहीं नहीं···ऐसा न करो ! उन्हें न बुलाओ, मुझे जाने दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।

बुढ़िया : देखो, मैं तुमसे तुम्हारा बच्चा नहीं छीनूँगी। मैं भी एक माँ हूँ। पर मेरी बात माननी होगी।

माँ : क्या ?

बुढ़िया : बच्चे को इस वक़्त यहीं छोड़ दो।

माँ : (**बात काट कर**) नहीं नहीं...

बुढ़िया : मेरी बात पूरी सुन लो। तुमने अपने बच्चे का पता लगा लिया है। तुमने उसे देख भी लिया है। तुम उसे देखती भी रहोगी। लेकिन इस बच्चे का भला इसी में है कि यह यहीं रहे।

माँ : नहीं नहीं। यह कभी नहीं होगा। मैं इसे नहीं छोड़ूँगी।

बुढ़िया : पागल न बनो। इस हालत में तुम बच्चे को कहाँ ले जाओगी? किस तरह पालोगी?

माँ : मैं इसे शहर से दूर ले जाऊँगी। मैं भीख माँगूँगी। मज़दूरी करूँगी। तन बेचूंगी। पर अपने बच्चे को अपने हाथ से पालूँगी।

बुढ़िया : तुम उसे पाल लोगी, पर क्या पढ़ा-लिखा सकोगी? क़ाबिल बना सकोगी? देखो तुम्हारी हट से बच्चे की ज़िन्दगी ख़राब हो जाएगी। इतनी ख़ुदगर्ज़ न बनो। बच्चे को यहीं रहने दो। मैं वादा करती हूँ कि हर रोज़ इसे पार्क में ले आया करूँगी। तुम इसे जी भर खिलाया करना। मैं इसे तुम से दूर न होने दूँगी। मुझ पर भरोसा करो। तुम्हारे बच्चे का भला इसी में है।

[**फ्लैश बैक समाप्त**]

सुरेन्द्र : ओह! तो फिर क्या हुआ?

बुढ़िया : मेरे रात भर समझाने पर तुम्हारी माँ मान गई। उस दिन के बाद वह हर रोज़ पार्क में आया करती। दिन भर भीख माँग कर जो कुछ कमाती, तुम्हारे लिए उसके खिलौने और तरह-तरह की चीज़ें खरीद लाती। तुम्हें गोद में लेकर वह

पागलों की तरह कभी छाती से चिपटाती, कभी प्यार करती, कभी रोती, कभी हँसती। शाम तक इसी तरह वह तुम्हें छाती से लगाए रखती और रात पड़ने पर जब मैं तुम्हें उसकी गोद से लेकर घर के लिए चलती, तो वह हिरनी की तरह मेरे पीछे-पीछे घर तक आती और घण्टों वहीं खड़ी रहती।

सुरेन्द्र : **(ग़म से कपकपाते लहजे में)** क्या, क्या उन्होंने यह नहीं बताया कि उनकी यह हालत कैसे बनी ? पिताजी ने उन्हें क्यों छोड़ दिया ?

बुढ़िया : तेरी माँ खूबसूरत न थी। उसके माँ बाप भी मर गए थे। तेरे बाप को एक अमीर और ख़ूबसूरत बेवा चाहने लगी। उसने कहा तुम अपनी इस औरत को छोड़ दो, मैं तुमसे ब्याह कर लूँगी। रुपये के लोभ में आकर तेरे बाप ने उससे ब्याह कर लिया। और वह तेरी माँ को छोड़ कर इस शहर में चला आया।

सुरेन्द्र : ओह ! पर उन्होंने मुझे माँ से क्यों छीन लिया ? मुझे अपने साथ क्यों ले आए ?

बुढ़िया : तू लड़का था न। तुझ से ख़ानदान जो चलता था। लड़की होती तो वह छोड़ ही आता। तेरी सौतेली माँ इस बात से सदा कुढ़ती और जलती रही। उसने तो तुझे मारना चाहा, पर……

सुरेन्द्र : लेकिन इसके बाद मेरी माँ का क्या हुआ ?

बुढ़िया : कोई छः महीने तक वह इस तरह छुप कर तुझसे मिलती रही। पर धीरे-धीरे उसका प्यार इतना बढ़ गया कि वह रात को भी तुझ से अलग न रहना चाहती थी। मैंने कोठी के माली को भी अपने साथ मिला लिया। अब तेरी माँ चुपचाप रात को भी मेरे कमरे में आ जाती और सुबह तक तेरे पास रहती। लेकिन एक दिन तेरे बाप को पता चल

गया। उसने तेरी माँ को कमरे में देख लिया।

[फ़्लैश बैक शुरू]

सुरेन्द्र का बाप : तू यहाँ भी आ मरी ?

माँ : हाँ, तुमने मुझे धोखा क्यों दिया ?

बाप : तुझे धोखा क्यों दिया ? मैं तो तुझे ज़हर भी दे देता। दुआ दे कि ज़िन्दा छोड़ दिया।

माँ : ज़हर दे देते तो अच्छा करते। मेरे बच्चे को मुझ से छीन कर तुमने जीते जी मुझे मार दिया।

बाप : बकवास बन्द कर और निकल जा यहाँ से।

माँ : मैं अब यहाँ से नहीं निकलूँगी। मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।

बाप : तू नहीं जाएगी ?

माँ : नहीं। नहीं तो मेरा बच्चा मुझे दे दो। अपने बच्चे को लेकर फिर मैं यहाँ नहीं आऊँगी।

बाप : तेरा बच्चा ! यह तेरा बच्चा नहीं है। तुझ से इसका कोई मतलब नहीं है।

माँ : कैसे नहीं है ? मैंने नौ महीने इसे पेट में रखा है। मैंने इसे जन्म दिया है। तुमने ज़बरदस्ती मेरा बच्चा छीन कर मुझे घर से निकाल दिया और चोरों की तरह यहाँ शहर चले आए। उसी दिन से मैं उसे ढूँढती फिर रही थी। अब मैंने उसे पा लिया है। अब मैं उसे नहीं छोड़ूँगी।

बाप : तू नहीं छोड़ेगी ?

माँ : नहीं, नहीं, नहीं। (रो पड़ती है) मैं तुमसे ज़बरदस्ती नहीं करती। मैं तुमसे विनती करती हूँ, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। मुझसे तुमने सब कुछ छीना। मैं तुमसे कुछ वापस नहीं माँगती। पर मेरा बच्चा मुझ से मत छीनो। यह मेरी आत्मा है। इस के बिना मैं तड़प-तड़प कर मर जाऊँगी। एक माँ से उस का आखिरी सुख मत छीनो।

बाप : बक-बक किए जाएगी, यहाँ से जाएगी नहीं ? सीधी तरह चली जा वरना पुलिस के हवाले कर दूँगा कि यह चोरी से मेरे मकान में दाखिल हुई है ।

माँ : तुम बुला लो पुलिस को । हाँ··· मैं खुद पुलिस के पास जाऊँगी । मैं चिल्ला-चिल्ला कर कहूँगी कि इस आदमी ने मेरा बच्चा मुझ से छीन लिया है । मैं जाती हूँ अभी पुलिस को लाती हूँ ।

बाप : (**भयानक स्वर में**) ठहरो । तू पुलिस को बुला कर लाएगी ?

माँ : हाँ, मैं सरकार में आवाज उठाऊँगी । मैं इन्साफ कराऊँगी ।

बाप : (**क्रूरता से**) और तू समझती है कि इस तरह तुझे तेरा बच्चा मिल जाएगा ?

माँ : हाँ, दुखियारी की दुखभरी आवाज़ ज़रूर सुनी जाएगी । एक माँ को उसका बच्चा ज़रूर दिलवाया जाएगा ।

बाप : तो जा । लेकिन याद रख जब तक पुलिस आएगी, तब तक इस बच्चे की लाश······

माँ : (**भय से काँप कर**) लाश ? क्या-क्या तुम मेरे बच्चे को मार डालोगे ? नहीं नहीं, मेरे जीते जी मेरे बच्चे का बाल बाँका नहीं होगा । तुम मेरे बच्चे का कुछ न बिगाड़ सकोगे । नहीं नहीं, (**गिर पड़ती है**) मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । मेरे पम्मी को कुछ न कहना । तुम मेरे टुकड़े-टुकड़ कर डालो । मुझे ज़िन्दा धरती में गड़वा दो । पर मेरे बच्चे का बुरा न करो, मुझ पर रहम खाओ ।

बाप : एक शर्त है ।

माँ : क्या ? क्या ?

बाप : आज से यहाँ न आना । बच्चा मेरे पास रहेगा और हर तरह ठीक रहेगा । लेकिन अगर तू यहाँ आई तो फिर इस बच्चे की खैर नहीं ।

माँ : नहीं नहीं, ऐसा न करना ।

बाप : तो तू इसी वक्त यहाँ से चली जा और कभी इधर न आना। मंजूर है यह शर्त ?

माँ : **(रोते हुए)** मंजूर है। अपने लाल के लिए मैं जन्म भर का वनवास सह लूँगी; देश निकाला सह लूँगी। मैं फिर कभी नहीं आऊँगी। पर मेरे बच्चे को प्यार से रखना, उसका बुरा न होने देना।

(फ़्लैश बैक समाप्त)

सुरेन्द्र : **(लगभग रोते हुए)** तो क्या इसके बाद माँ नहीं आई ?

बुढ़िया : बस एक बार आई और फिर कभी न आ सकी। उस दिन तेरे बाप को वचन देने के कई महीने बाद तक वह न आई। उसने शहर से दूर क़स्बे में झोंपड़ी डाल ली थी और हर आठवें दिन मैं जाती और तुम्हारी ख़ैर ख़बर दे आती। वह रो-रो कर तुम्हारे बारे में एक-एक बात पूछती और सैकड़ों चीज़ें देती। पर बरसात आई और तुमको भीगने की वजह से बहुत ज़ोर का बुख़ार चढ़ आया। मैं पन्द्रह दिन उसके पास न जा सकी। उससे न रहा गया और एक रात जब बहुत बारिश हो रही थी, वह चोरी से घर में घुस आई।

सुरेन्द्र : **(दम साधकर)** फिर ?

बुढ़िया : वह तेरे कमरे में आने के लिए पिछले जीने पर चढ़ी ही थी कि तेरे बाप ने उसे देख लिया। उसने एक ज़ोर का धक्का दिया और तेरी माँ लुढ़कती हुई नीचे जा गिरी।

सुरेन्द्र : **(चीख़ कर)** ओह !

बुढ़िया : **(साँस छोड़ कर)** उसके बाद मैं ने बस इतना देखा कि तेरे बाप और तेरी सौतेली माँ ने जल्दी-जल्दी उसे कम्बल में लपेट कर मोटर में डाला और बरसते मेंह में न जाने कहाँ ले गए।···फिर वह कभी नहीं आई।

सुरेन्द्र : **(भावनाओं के वेग से आंसू बहाते हुए)** ओह माँ ! पिताजी ने

तुम्हारी जान ली, तुमने मेरी ख़ातिर जान गँवा दी। माँ, मैं तुम्हारे दूध का हक़ अदा करता। पर जिसने तुम्हें यह दुख दिया वह अब इस दुनिया में नहीं है। मैं क्या करूँ? मैं तुम्हारा बेटा नहीं, तुम्हारे लिए एक श्राप साबित हुआ हूँ। मुझे माफ़ कर देना माँ—मैं भी सुखी नहीं हूँ। सौतेली माँ ने मेरी ज़िन्दगी में भी ज़हर घोल दिया है। (**रो पड़ता है।**)

बुढ़िया : सौतेली माँ किसकी होती है बेटा! सौतेली माँ ने तो भगवान् को भी चौदह बरस का वनवास दिला के छोड़ा। औलाद की क़दर बस माँ ही जानती है।

सुरेन्द्र : ओह पिताजी, आपने इतना ज़ुल्म तोड़ा। आपको क्या मिला?

बुढ़िया : बदले में एक जवान औरत मिल गई। माँ तो तेरी गई। वह तेरा बाप नहीं, दुश्मन था।

सुरेन्द्र : हाँ, वह मेरा दुश्मन था। उसने मेरी माँ पर ही ज़ुल्म नहीं ढहाये, मेरी ज़िन्दगी भी बरबाद कर दी। अगर सौतेली माँ न होती तो मेरा बचपन इतनी मुसीबतों में न गुज़रता। मैं अपने ही घर में नौकर से भी बुरी ज़िन्दगी न गुज़ारता। मेरी माँ ज़िन्दा होती तो वह मेरी शादी कभी ऐसी औरत से न करती, जिस ने मेरी ज़िन्दगी अजीर्ण बना दी है। (**अचानक उठ खड़ा होता है**) लेकिन······लेकिन यह क्या···यह क्या है? मेरी ज़िन्दगी में वही होने जा रहा है जो मेरे बाप की ज़िन्दगी में हुआ?······मैं अपने बाप की तरह एक औरत के होते हुए दूसरी से शादी करने जा रहा हूँ?···क्या बाप की आत्मा मुझ पर भी सवार हो गई है।···मैं भी अपने बेटे से उसकी माँ की गोद छीन रहा हूँ?······यह क्या है?··· यह कैसा श्राप है?···मैं भी अपने बेटे के हक़ में वैसा ही साबित होने जा रहा हूँ?······

बुढ़िया : (**कुछ न समझ कर**) यह क्या कह रहे हो बेटा? तुम ख़ाली-

खाली आँखों से हवा में क्या देख रहे हो ?

सुरेन्द्र : मैं ?···मैं···मैं देख रहा हूँ मेरे बाप की आत्मा ने मेरे इकलौते बेटे की गर्दन में भी अपने दाँत गड़ा दिए हैं।···वह उसका भी खून पीने वाला है। पर···पर···मैं उसे अपने बेटे का खून नहीं पीने दूँगा··· नहीं पीने दूंगा (**जाने लगता है**)।

बुढ़िया : तुम कहाँ जा रहे हो ? कहाँ जा रहे हो मेरे बच्चे ?

सुरेन्द्र : जहाँ वही क़िस्सा दोहराया जाने वाला है, जो तुमने सुनाया है धाय माँ।

बुढ़िया : क्या ?···क्या तुम भी···?

सुरेन्द्र : (**रोकर**) हाँ धाय माँ। मैं भी अपने बच्चे से उसकी माँ छीनने जा रहा था। लेकिन अब मैं ऐसा नहीं करूँगा। अब मैं अपनी माँ की आत्मा पर दुबारा अत्याचार होने नहीं दूँगा। मेरी पत्नी ने मेरा जीवन नर्क बना दिया है। पर अब मैं इस नर्क को भोग लूँगा। मैं क्लेश और कलह की रात में रह लूँगा। लेकिन अपनी रात रौशन करने के लिए मैं अपने बेटे की ज़िन्दगी की सुबह को अन्धकार में नहीं बदलूँगा। कभी नहीं बदलूँगा।

[एक ऐसी ध्वनि से साथ समाप्त, जो विषाद से शुरू होकर एक आध्यात्मिक आल्हाद के भाव को उजागर करती है।]

पत्थर
और आग
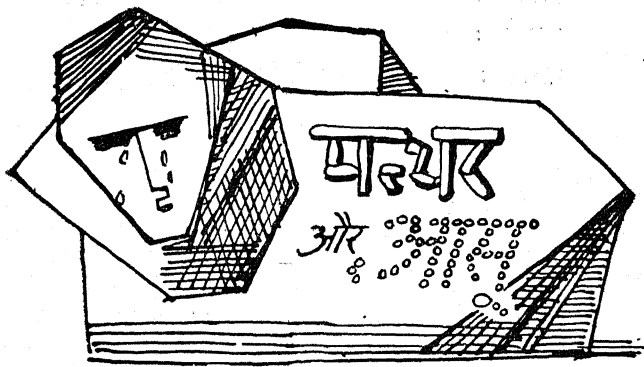
पात्र

रवी	:	एक प्रगतिशील विचारों का युवक
पिता	:	रवी के पुराने विचारों वाले संयमी पिता
माँ	:	रवी की स्नेहमयी माँ
केशव	:	रवी का छोटा भाई
गोविंद	:	रवी के बड़े भाई
कमला	:	रवी की छोटी बहन
भाभी	:	रवी के बड़े भाई की पत्नी

६ साधारण से घर का आँगन । एक स्त्री जिसकी आयु ५५ वर्ष के लगभग है, बैठी चरखा कात रही है । उसका छोटा बेटा केशव बाहर से भागा-भागा आता है ।]

केशव : (अन्दर आते हुए) माँ, ओ माँ, पिता जी खेत से आ गए । वह आ रहे हैं ।

माँ : तो अभी क्यों घर में चला आया ? जहाँ सुबह से गुल्ली-डंडा और गोली-कंचे खेल रहा था, वहीं जा । अब डर के क्यों घर में घुसे है ?

केशव : माँ, मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ । तू उनसे कुछ न कहना, नहीं तो वह मेरी खाल उधेड़ डालेंगे । मेरी अच्छी माँ—मैं किताब लेकर बैठता हूँ । तू उनसे कुछ न कहना । **(अन्दर कमरे में किताब लेकर बैठ जाता है, उसके पिता भीतर आते हैं ।)**

माँ : आज खेत से आने में बहुत देर लगा दी ?

पिता : **(गुस्से से)** केशव कहाँ है ?

माँ : कमरे में पढ़ाई करता दीखे है ।

पिता : वह पढ़ाई कर रहा है ? क्यों झूठ बोलती है । वह बाहर गली में गुल्ली-डंडा खेल रहा था, मुझे देख कर घर में आन घुसा है ।

माँ : कहाँ ? वह तो सुबह से यहीं किताब लिये बैठा है । तुम्हें तो वैसे ही हर बात का वहम हो जावे है ।

पिता : देख, मैं तुझे लाख बार समझा चुका हूँ कि अपने बेटों के ऐबों पर पर्दा डालने की कोशिश न कर । उनकी बेजा हिमा-

यत न कर, वरना एक दिन मूँड़ पकड़ कर रोयेगी। तूने उस बड़े को तो बिगाड़ कर रख दिया, अब इस छोटे को भी हाथों से निकाल देना चाहती है ?

माँ : तुम तो बात बे-बात उस बड़े पर गुस्सा उतारने पर तुले रहो हो। आखिर उसमें क्या खराबी है ? वह कहाँ का बेसिरा हो गया है ? शहर से हर आठवें दिन तुम्हें आकर देख जावे है। तनखाह में से जो कुछ बचे है, वह हाथ पर धर जावे है। दुनिया के बेटों को देखो—

पिता : देख, फिर तूने मेरे सामने दुनिया का नाम लिया ? दुनिया भाड़ में जा रही है तो मैं तो उसके साथ भाड़ में नहीं जा सकता। बात-बात पे दुनिया की बात ले बैठती है। अरे दुनिया का सिर फिर जाए, दुनिया दीन-धर्म से डिग जाए, अपना घर लुटाने लगे, मैं तो उसकी नकल नहीं उतारूँगा। मेरे अपने असूल हैं।

माँ : पर वह तुम्हारी कौनसी बात पर नहीं चलता ? कोई बुरी चीज वह नहीं खाता। कोई बुरा काम वह नहीं करता। पैसा वह बरबाद नहीं करता।

पिता : तू तो बस पैसों पर मरती है। वह हर महीने आकर तनख़ाह का एक हिस्सा दे जाता है, और तू समझती है वह पूरी तरह राहे-रास्त पर है। तुझे क्या मालूम कि उसकी ज़िद्द की वजह से दुनिया अब मुझे टोकने लगी है।

माँ : क्या टोके है और किस बात पर टोके है दुनिया ? मेरे रेबो में क्या ऐब देखा है किसी ने ?

पिता : दुनिया ऐब देखती नहीं, ऐब निकालती है। उन्हें तो उँगली उठाने का मौक़ा मिलना चाहिए। उसकी उम्र अब २६ साल होने की आई है लेकिन वह ब्याह नहीं करता। लोग बाग अब मुझ से आकर पूछने लगे हैं कि पंडित जी लड़के की

शादी क्यों नहीं करते ? आप तो इतने सख़्त स्वभाव के आदमी हैं, क्या आपका बेटा भी आपकी बात नहीं मानता ?

माँ : तो लोगों की बातों पर क्या जवान बेटे से लड़ने बैठोगे ?

पिता : यह लोगों ही की बात नहीं है। यह दुनियादारी की बात है। शादी की एक उम्र होती है। अगर लड़का इस उम्र से निकल जाए तो उसके लिए अच्छा रिश्ता नहीं आता। उसकी हवा निकल जाती है। फिर गिरकर रिश्ता करना पड़ता है।

माँ : जिसको गिर कर रिश्ता करना पड़ता हो वह डरे। मेरे दरवाज़े पर तो सुबह शाम डिप्टी कलक्टर आके नाक रगड़ते हैं।

पिता : लेकिन इस तरह कुछ दिन और लोग नाक रगड़ते रहे तो फिर कोई भी आकर न फटकेगा। लोग अभी से बातें उड़ाने लगे हैं। कोई कहता है लड़के में खराबी होगी। कोई कहता है महाराज किसी सोने की चिड़िया के इंतज़ार में बेटे को बूढ़ा कर रहे हैं। उसकी ज़िद्द से मेरी पोज़ीशन में फ़र्क आने लगा है।

माँ : पर वह नहीं मानता तो तुम क्या करोगे ?

पिता : मैं ? एक हद तक नर्मी से काम लेता हूँ। जब तक घोड़ा थपकी से चलता है, मैं उसे थपकी देता हूँ। जब तिकतिकाने की ज़रूरत होती है तो उसे तिकतिकाता हूँ। लेकिन अगर मुझे पता चल जाए कि बिना चाबुक उठाए काम नहीं चलेगा तो—

माँ : तो क्या उसे चाबुक से मारोगे ?

पिता : (**झुँझला कर**) तू भी रही गँवार की गँवार ही। तुझे सारी उम्र मैंने पढ़ाया पर तुझे न बात करने का सलीक़ा आया और न बात समझने का। कहता हूँ खेत की, समझती है खलियान की। मैं कहता हूँ अब के साहे में मुझे उसकी

शादी ज़रूर कर देनी है, चाहे वह राज़ी हो या न हो। अब तक मैं उसकी हाँ के इन्तज़ार में था, अब मैं उससे नहीं पूछूँगा। इस कम्बख़्त की न-न में वह देहरादून वाले का रिश्ता निकल गया। वहाँ रिश्ता होता तो बड़ा माल मिलता।

माँ : बस तुम तो माल समेटने की ताक में बैठे हो। मेरा बेटा माल के लोभ में न फिरता है।

पिता : हाँ, हाँ, क्या कहने हैं तेरे बेटे के और तेरे। ब्याह में एक ज़री की तीहल न मिली तो अच्छी ख़ासी बहू में सौ-सौ ऐब निकालती फिरेगी।

मां : खैर, मैं तो जो करूँगी सो करूँगी, पर तुम अपनी कहो। अगर तुम्हारी नौली न भरी तो तुम बेटे को फेरों पर से उठा लाओगे। बड़े बेटे के ब्याह की याद है। रुपये कम मिलने पर कितने भड़के थे। एक मिनट में बेटी वाले की इज़्ज़त-आबरू मिट्टी में मिला दी थी।

पिता : (**क्रोध में आते हुए**) देख, अब तू फिर ग़ुस्सा दिलाने की बातें करने लगी। मुझे ग़ुस्सा आ गया तो फिर कहेगी बुढ़ापे में मेरी आबरू किरकिरी करो हो। बस, तू अब मेरा हुक़्क़ा ताज़ा करके चिलम भर दे, मुझे बाहर जाना है।

मां : तो मैं ही कौनसा फ़ालतू बैठी हूँ। मेरा तो सुबह से कुछ भी काम न हुआ। दूध बिलोने को पड़ा है। गोबर रात का इकट्ठा हुआ थापने को पड़ा है, और दिन इतना चढ़ आया। चलूँ, चूल्हा जलाऊँ। हाँ, यह तो बताओ खेत से क्या-क्या लाए हो?

पिता : टिमाटर हैं, गोभी का फूल है, सेम की ताजी फलियाँ हैं।

मां : आज तो बड़ी सब्जियाँ ले आए?

पिता : वह भी तो शाम को आएगा न। उसके लिए दो तीन सब्ज़ियाँ तो चाहिएँ।

माँ : ओ हो, अभी तो बेटे के चाबुक लगाने जा रहे थे, और अब उसकी ख़ातिर की तैयारियाँ की जा रही हैं। तुम्हारा भी कुछ पता नहीं चलता। कभी तो आँख दिखा कर बेटों का खून सुखा डालो हो, कभी ऐसे लाड़-प्यार पर उतरो हो कि बस।

पिता : तुझे क्या मालूम कि बाप का दिल कैसा होता है। माँ का काम तो बेटे बेटियों को लाड़ प्यार करके ख़त्म हो जाता है। लेकिन बाप पर उनको लायक़ और क़ाबिल बनाने की ज़िम्मेवारी होती है। अगर वह औलाद को आँख न दिखाए और माँ की तरह नर्म बन जाए तो औलाद बिगड़ जाए, बेक़ाबू हो जाए, और दुनिया के चलन का शिकार हो जाए। बाप को अपनी औलाद के सामने छाती पर पत्थर, आखँ पर ठीकरा रखकर आना पड़ता है।

दूसरा दृश्य

[वही आँगन। माँ खाना बना रही है। उसका बड़ा बेटा रवी बैठा खाना खा रहा है।]

माँ : अरे एक पराठा तो और ले।

रवी : नहीं माँ नहीं—मुझे अब बिल्कुल भूख नहीं रही।

माँ : अरे लेगा भी। देख कितना करारा बना है। मर जाऊँगी तो याद करेगा कि एक माँ थी जो ऐसे पराठे बना के खिलाया करे थी।

रवी : तुम भी कैसी-कैसी बातें किया करती हो माँ।

माँ : क्यों, मैं भूठ कहती हूँ ? पचास से ऊपर मेरी उम्र होने को आई। दाँत मेरे गिर गये। टुकड़े निगल लूँ तो निगल लूँ, वरना मेरी तो भूख ही मर गई। शरीर मेरा थक गया है।

रवी : इन पिछले दिनों में तो तुम बहुत ही थक गई हो। काम भी तो सारा ख़ुद ही करना पड़ता है तुमको।

माँ : काम तो कुछ ज्यादा नहीं है बेटा। बस ज़रा गाय का काम ज्यादा समभ ले। दुख्खम-सुख्खम उठकर कर लेती हूँ। **(फूँक मारते हुए)** लकड़ी भी तो गीली हैं, आग ही नहीं जलती। असल बात यह है कि अब तेरे बापू से रोज लड़ाई रहने लगी है।

रवी : क्यों ? किस बात पर ?

माँ : कोई बात हो तो कहूँ भी। बैठे बिठाए बस किसी भी बात पर बिगड़ पड़े हैं। अब अकेली मैं क्या-क्या काम करूँ और किस-किस बात को सुनूँ। कुछ कहूं हूँ तो कहवे हैं कि तेरी मेरी नहीं बनती तो अपने बेटे का ब्याह कर ले और उसके साथ चली जा।

रवी : **(बात समभ कर)** हूँ। माँ मुभे उनसे कहना ही पड़ेगा। डर के मारे मैं कुछ ही नहीं कहता। लेकिन इस उम्र में उनका तुमसे लड़ना तुम को फटकारना बड़ा ग़लत है। एक तो उनसे यह नहीं होता कि एक नौकर रख लें, जो ऊपर का काम करे; उस पर···

माँ : बेटा, मुभे नौकर वौकर नहीं चाहिए। काम वाम मैं सब कर लूँगी। पर मुभे तो अब अकेला घर फाड़ खाने को आवे है। बहू घर में हो तो तेरे बापू भी मेरे से न लड़ें। बहू बेटी के सामने उनकी भी जबान न खुले। अब अकेली पा के जो उनके जी में आवे है, सुना देवे हैं।

रवी : **(गहरी साँस लेकर)** मैं सब कुछ समभता हूँ माँ।

मा : तो फिर समझवाल होकर नादान क्यों बने हैं ? हम दोनों का बुढ़ापा आ गया । हमें भी आराम की ज़रूरत पड़ने लगी है। बड़ा लड़का गोद न देते तो अब तक बहू आँगन में डोलती और पोते घर में खेलते। वह भी यही कहवें हैं कि बेटे हुए, पर न घर के आगे बाजा बजा, न ड्योढी के बाहर पंच इकट्ठे हुए। दुनिया के लड़कों को घोड़ी चढ़ते देखे हैं और ठंडी साँस भर के रह जावे हैं।

रवी : माँ मैं सब कुछ महसूस करता हूँ, मैं सब कुछ करना चाहता हूँ। पर···पर क्या करूँ।

माँ : क्यों ? तुझे क्या दिक्कत है ? तुझे किस बात की कमी है ? अच्छी नौकरी तुझे मिली हुई है । माँ, बाप, भाई बहिन तेरे ऊपर हैं। घर में भगवान का दिया सब कुछ है। रोज अच्छे से अच्छे रिश्ते आते हैं। घर में गेहूँ, घी, खाँड, जेवर, कपड़ा सब कुछ तैयार है । बस एक तेरी हाँ की देर है। हाँ कर दे बेटा ।

रवी : माँ (**कहते-कहते रुक जाता है ।**)

माँ : क्या है ? तू क्या कहना चाहवे है ? अपनी माँ से तो अपनी मन की कह । मैं उनसे नहीं कहूँगी । तुझे कैसी लड़की, कैसा घर, कैसा लेन देन चाहिए। हम तेरे लिए वैसा ही घर ढूँढ देंगे ।

रवी : माँ, मैं एक लड़की से शादी करना चाहता हूँ ।

माँ : तो तूने पहले क्यों नहीं कहा ? अपने बापू को क्यों न बताया ? कहाँ है वह लड़की ?

रवी : शहर में है माँ।

माँ : तो उससे दिन तय करके उसके माँ बाप को यहाँ भेज दे। हम बात पक्की कर देंगे ।

रवी : पर माँ, पिता जी कभी न मानेंगे ।

माँ : क्यों, कोई नुकस है उनमें ? ग़रीब हैं क्या ?

रवी : नहीं माँ, वह दूसरी जात के हैं ।

माँ : (लगभग चीख कर) रवी ।

रवी : वह खत्री हैं माँ ।

माँ : यह कैसे हो सकेगा, रवी ! हम तो ब्राह्मण हैं । हम एक दूसरी जात की लड़की को घर में कैसे ला सकते हैं ?

रवी : मगर दूसरी जात में खराबी क्या है ?

माँ : खराबी ही ना है ? अरे भला खराबी कैसे ना है ? कहाँ ब्राह्मण कहाँ खतरी । एक ऊँची जात, एक नीची जात । बेटा, ऐसी बात दिल से निकाल दे । कोई अपनी जात की लड़की ढूँढ ले, या हम से कह दे । हम तेरी मर्जी की लड़की ढूँढ-ढाँढ देंगे ।

रवी : मगर मैं तो उस लड़की से शादी करने में कोई खराबी नहीं समझता ।

माँ : तेरे समझने से क्या होता है बेटा । तेरे बापू और दूसरे लोग इस बात को नहीं मान सकते । और फिर ज़रूरत भी क्या है । यह काम तो उन लड़कों के हैं, जो अपनी बिरादरी में गिरे हों, जिनके रिश्ते न आते हों । हमारे तो आए दिन रिश्ते वाले आकर उलटे फिरते हैं ।

रवी : मगर मैं तो उससे शादी करने का वायदा कर चुका हूँ । और किसी से शादी नहीं कर सकूंगा माँ ।

माँ : देख रेबो । पढ़ा लिखा समझदार होकर ऐसी बात मत कर । तू सब समझे है कि हमारे घर की कितनी इज्जत है । तेरे बापू बिरादरी की नाक हैं । तेरे भाई हैं, उनकी औलादें ब्याहने को हैं । यह तो नाक-कटी है ।

रवी : तो फिर मैं शादी ही नहीं करूँगा ।

माँ : देख, अब तू मुझ से तोड़ा टूटन की बात कर रहा है । फिर

कहेगा तू बे बात नाराज हो गई। मैं तेरे ऊपर आस लगाए बैठी हूँ। बिरादरी की भाजी मुझ पै चढ़ी है। अपना ब्याह मुझे कर लेने दे और बिरादरी का कर्ज चुका लेने दे। तेरे ब्याह की आस ही में तो मैं सबके घर तिलक और मुँह दिखाई देकर आई हूँ। अब मुझे भी तो उनसे तिलक और मुँह दिखाई लेने दे।

रवी : मगर मैं तुमको भाजी बाँटने या तिलक लेने से तो नहीं रोकता।

माँ : रोक कैसे नहीं रहा ? ऐसी बे-जात की शादी करेगा तो मैंने बाँट ली भाजी और ले लिया तिलक। यह तो बिरादरी का मामला है। बिरादरी ऐसे ब्याह में आकर न झाँकेगी। ऐसे ब्याह परदेस में ही हो सकते हैं, इस ड्योढ़ी पर नहीं हो सकते।

रवी : तो तुम शहर जाकर मेरा ब्याह कर दो।

माँ : रेबो—देख अब तक तो मैं समझती थी कि तू वैसे ही कह रहा है। पर अब मुझे लगे है तू मेरे हाथों से निकल गया है। बेटा, मुझे ये बातें पसन्द ना हैं। क़हे दूँ हूँ कि आज मुँह से निकाली सो निकाली, फिर ऐसी बात मुँह पर मत लाना। जो तेरे बापू ने सुन ली तो माँ बेटे, दोनों को घर से निकाल कर पानी पीयेंगे।

[रवी के पिता का बाहर से स्वर सुनाई देता है]

बाप : **(बाहर से)** अरे भई देखो कौन आए हैं।

माँ : **(घबरा कर)** देख तेरे बापू आ रहे हैं। उनके सामने कुछ मत कह दीजियो। तुझे मेरी कसम, कभी अपने साथ-साथ मेरी भी दुर्गति करावे। कौन आया है जी। **(पिता और बड़े लड़के गोविंद का प्रवेश)** अरे गोविंद तू कैसे रास्ता भूल गया ?

गोविंद : राम राम माँ।

माँ : जीता रह। भगवान एक और बेटा दे।

रवी : भैया नमस्ते।

गोविंद : नमस्ते।

बाप : कहो भई, क्या मोटर से आए थे ?

रवी : जी हाँ, रेल काफी देर से आती है, इसलिए मोटर से चला आया।

माँ : देख गोविन्द, गर्म-गर्म पराठे बना रही हूँ। तू भी खाले।

गोविंद : नहीं माँ, मैं तो खाना खा के चला हूँ।

पिता : अरे भई एक-आध तो खा ही लो।

गोविंद : नहीं पिता जी, मैं खा कर ही चला था। और अब हम पराठा क्या खाएँगे। अब तो हम रवी से मिठाई तय करने आए हैं।

पिता : चलो भई, तुमने यह काम संभाल लिया, हमारा बोझ हल्का हुआ। अब भाई-भाई बात तय करके हमें बता दो। हम उसी मुताबिक काम सरअन्जाम देंगे।

गोविंद : हाँ भई रवी, अब बताओ कब मुँह मीठा करवा रहे हो ? भई हम तो कुछ पढ़े लिखे थे नहीं, इसलिए सुसराल भी गँवार मिली। मगर तुम पढ़े-लिखे हो। तुम्हारे सहारे हमें भी मेज़-कुर्सियों पर बैठ कर खाना नसीब हो जाएगा।

पिता : देख लो भई ! तुम्हारे बड़े भाई को तुम्हारी शादी का चाव हम से भी ज़्यादा है। आज यह एक रिश्ता तय करके आए हैं, जो बिल्कुल तुम्हारी पसन्द का है। इलाहाबाद में एक इन्कमटैक्स अफसर हैं। उनकी लड़की है और बी० ए० में पढ़ रही है।

गोविंद : और माँ, लड़की रवी की तरह ही पतली और खूबसूरत है।

पिता : **(विनोद पूर्वक)** और यह भी तो कहो कि वह इन हज़रत को जानती है।

रवी : (**घबरा कर**) मुझे ? मैं, मैं किसी इन्कमटैक्स आफ़िसर की लड़की को नहीं जानता ।

पिता : (**विनोद पूर्वक**) तुम एक साथ इतना घबरा क्यों गए ? भई, हम तो यह जान कर खुश हैं कि वह तुम को जानती है ।

गोविंद : और जानती ही नहीं, इनकी भक्त भी है ।

रवी : (**और ज्यादा बौखला कर**) मगर मैं···मैं जो कह रहा हूँ कि मैं ऐसी किसी लड़की को नहीं जानता । इलाहाबाद में लड़की से तो क्या, किसी लड़के से भी मेरी जान-पहचान नहीं है ।

पिता : तो हमने यह कब कहा कि तुम्हारी उससे जान-पहचान है । यह कोई ज़रूरी तो नहीं कि जो तुम्हें जानता हो, उसको तुम भी जानते हो ।

रवी : क्यों ? ज़रूरी क्यों नहीं ?

गोविंद : (**हँस कर**) अजी आपने तो बेचारे रवी को चक्कर में डाल दिया । देखो तो किस क़दर घबरा गया है । अरे भई, बात सिर्फ इतनी है कि तुम अखबार में लिखते हो और उस लड़की ने तुम्हारी चीजें पढ़ी हैं । उसके पिता जी यही बताते थे कि शुरू में वह भी रवी की तरह शादी से इन्कार करती थी । पर जब उसे मालूम हुआ शादी रवी से होने वाली है, उसने ना-नुकर करना ही बन्द कर दिया ।

पिता : अरे यह लड़के अखबार में मग़ज पच्ची यूं ही थोड़ा करते हैं। देखो कहाँ-कहाँ पर बना लेते हैं अपने भक्त । अरे भई तू कैसे चुप है ।

माँ : मुझे कौन पूछे है । ब्याह हो, न हो, मुझे कौन-सा दहेज छाती पर धर कर ले जाना है ।

पिता : गोविन्द ! यह तुम्हारी माँ की ख़ूबी है कि अगर लीपने को कहो तो खोदेगी और अगर खोदने की कहो तो लीपेगी । अगर

यह सीधी बात कह दे तो इसकी शान में फर्क आ जाए।

माँ : हाँ, मैं तो पागल हूँ, गाँव की गंवारिन हूँ। अकलमन्द तो तुम सब हो। तुम ही समझा लो। बैठा तो है तुम्हारे सामने।

गोविंद : पिता जी ! आपने तो माँ को नाराज कर दिया। बातें खुशी की कर रहे हैं और आपने ऐसी बात छेड़ दी। हाँ भई रवी, तो यह रिश्ता तो तुम्हारे लायक़ है न ?

[**रवि चुप रहता है**]

पिता : बोलो तो, जवाब दो।

माँ : अरे बोलता क्यों नहीं है ? या माँ के ऊपर ही शेर होने को है।

पिता : (**चौंक कर**) क्यों क्या हुआ है ? क्या कहा है रवी ने ?

माँ : पूछ लो इसी से। अरे बताता क्यों नहीं है कहाँ करनी है शादी तुझे।

पिता : (**गम्भीर होकर**) क्यों, यह क्या क़िस्सा है ? रवी, तुम कहीं शादी की बात तय कर चुके हो ?

माँ : (**नीचे नज़र किए किए**) जी हाँ।

पिता : कहाँ ?

रवी : शहर में।

पिता : किसके यहाँ ? कौन है ? पूरी बातें बताओ।

रवी : जी, वे खत्री हैं।

पिता : (**गरज कर**) रवी, तुम होश में हो ?

गोविंद : क्या कह रहा है रवी तू ?

रवी : मैंने वायदा कर लिया है।

पिता : बेशर्म, बेग़ैरत ! अपने पिता के मुँह पर ये बातें कहने से पहले मर न गया। तू ने किस से पूछ कर वायदा किया ? किस के बूते पर इतनी हिम्मत की ?

रवी : (**दबे स्वर में**) किसी के नहीं। मैंने समझा यह ग़लत नहीं है।

इसमें कोई बुराई नहीं है

पिता : तेरे लिये तो भंगी और चमार में भी कोई बुराई नहीं है। तेरे लिए सोना मिट्टी, सब बराबर है। इस पढ़ाई और आज़ादी ने तेरी आत्मा को इतना गिरा दिया है ? तू ज्ञान, धर्म, दोनों खो बैठा है।

गोविंद : पिता जी, आप ज़रा चुप हो जाइये। नाराज़ न होइये। रवी समझदार है। वह बिना आपकी अनुमति के कुछ न करेगा। मुझे ज़रा इससे दो बातें कर लेने दीजिये। रवी, तुमने जहाँ बात की है लड़की कैसी है ?

रवी : मेरी तरह अख़बारों में लिखती है। अच्छे-ख़ासे घराने से है।

गोविंद : मगर है ज़ात की खत्तरी ?

रवी : जी हाँ।

पिता : (**आवेश में**) मगर मेरी इजाज़त के बिना तूने यह हिम्मत कैसे की ?

गोबिंद : पिताजी आप ज़रा चुप रहिये। रवी ऊँच नीच को समझता है। रवी, क्या वह बहुत खूबसूरत है ?

रवी : मामूली नक्श और साँवली रंगत की है।

गोविंद : तो क्या उसके माता-पिता उसकी शादी में बहुत ज़्यादा दौलत देंगे ?

रवी : वह ख़ासी अच्छी हैसियत के आदमी हैं। लेकिन मैं वहाँ दहेज़ के लिए शादी नहीं कर रहा हूँ।

गोविंद : फिर तुम वहाँ किस लिए शादी करना चाहते हो ?

रवी : इसलिए कि मैं उसे चाहता हूँ और वह मुझे चाहती है। मैंने वायदा...

पिता : (**गरज कर**) ख़ामोश बेहया, बेइज़्ज़त। तूने शर्मोहया को उठा कर ताक पर रख दिया है। मुझे गुमान भी न था तू इस हद तक बिगड़ जाएगा। मैं तुम जैसे कुल-कलंक का मुँह

देखना भी नहीं चाहता ।

गोविंद : पिताजी, पिताजी ! आप चुप हो जाइये । सहार से काम लीजिए...

पिता : बस गोविंद । तुम अलग हट जाओ । मुझे रोकने की कोशिश न करो । यह कुल के नाम को बट्टा लगाने पर तुला है । मैं इसके साथ बिल्कुल रियायत नहीं बरत सकता । मेरे घर में ऐसे किसी आदमी के लिए जगह नहीं हो सकती । इसने किस बूते पर उस लड़की से शादी करने का वायदा किया ? यह होता कौन था खुद बात तय करने वाला ? मेरे ज़िन्दा होते हुए इसने मुझे नज़र-अन्दाज़ कैसे किया ?

रवी : (**दबे मगर स्पष्ट स्वर में**) मैं जानता था, आप इस बात की आज्ञा न देंगे ।

पिता : और यह जानते-बूझते हुए तूने यह हरकत की ? शहर की हवा ने तेरे इतने पर निकाल दिए ? तुम अब शहर वापस नहीं जाओगे । तुम यहीं रहोगे ।

रवी : (**चौंक कर**) मगर मैं नौकरी कैसे छोड़ सकता हूँ ?

पिता : करते हो न सवा लाख की नौकरी ? १०० रुपल्ली लाते हो । इससे तीन गुनी रक़म तो मैं अपने खेत के नौकरों में बाँटा करता हूँ । अब तक मैं समझता था कि तुम कुछ तरक्क़ी करना चाहते हो । नौकरी करके ज़िन्दगी का तजुरबा और तालीम हासिल करना चाहते हो । लेकिन आज मुझे मालूम हो गया कि यह सब धोखा था, फ़रेब था । तुम नौकरी के बहाने आज़ादी और आवारगी के रास्ते पर चल पड़े हो । अब मैं तुम्हें उस लड़की के पास नहीं जाने दूँगा । न कुत्ता देखेगा, न भौंकेगा ।

रवी : पर, पर मुझे शहर जाना होगा । मैं अपने वचन से नहीं फिर सकता ।

माँ : अरे मैं कहूँ हूँ मान जा। क्यों अपनी और मेरी मिट्टी पलीद कर रहा है। चुप हो जा।

पिता : (**भड़क कर**) अब क्या चुप होगा। हाथों से तो निकाल दिया, अब चाहती है चुप हो जा।

माँ : वाह, बेटे से तो पार न बसाती, मुझ पर झूँझल क्यों उतारते हो ?

पिता : (**क्रोध से**) बस ख़ामोश रहो। ज़बान दराज़ी मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। गोविंद, तुम इन्कमटैक्स आफ़िसर से हाँ कर दो। हम इसी महीने शादी कर लेंगे।

रवी : (**चौंक कर**) पिता जी !

पिता : तुम्हें कहने की ज़रूरत न होगी। लड़की तुमको दिखा दी जाएगी।

रवी : लेकिन मैं अब कोई लड़की देखना नहीं चाहता।

पिता : (**पूर्ण गंभीरता से**) रवी, तुम हमारे स्वभाव को जानते हो। तुम्हारे पैर में अब हमारे पाँव की जूती आने लगी है। अब हम तुमको बेटे के तौर पर नहीं, एक दोस्त के तौर पर बरतना चाहते हैं। जानवर को मार कर सीधा किया जाता है, लेकिन अक्लमन्द आदमी के लिए इशारा काफ़ी होता है। हम नहीं समझते कि अब इस बात की जरूरत रह गई है कि हम तुम को बचपन की तरह मार कर और घर से निकाल कर सीधे रास्ते पर लाएँ।

रवी : लेकिन मैं ग़लत रास्ते पर तो नहीं जा रहा।

पिता : तुम ग़लत रास्ते पर नहीं जा रहे हो ? अरे तुम मेरे वंश का खून गन्दा करना चाहते हो। भारद्वाज ऋषि के पवित्र ब्राह्मण खून में एक नीची जात का खून मिलाना चाहते हो। तुम आम पर नीम की क़लम चढ़ा कर मेरे वंश के फल को कड़वा करना चाहते हो और कहते हो गलत रास्ते पर नहीं

चल रहा ? याद रखो मैं तुम्हें ऐसा हरगिज न करने दूँगा। मैं तुम्हारा बाप ज़रूर हूँ, मगर अपने खानदान के ख़ून और अपने वंश की पवित्रता बनाए रखना मेरा पहला फ़र्ज है।

रवी : पिता जी, मैं आप से बहस नहीं करना चाहता। मगर मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि मैं आदमी-आदमी में केवल जन्म और जात की बिना पर भेद करने को तैयार नहीं हूँ। न ब्राह्मण आम का पेड़ है न दूसरी जात के लोग नीम के वृक्ष। सबका ख़ून एक जैसा पवित्र है। ख़ून केवल बीमार का ख़राब होता है।

पिता : ओह, आवरगी ने तुम्हारी बुद्धि को इस हद तक भ्रष्ट कर दिया है ? किताबी ज्ञान और राजनैतिक लीडरों के लैक्चरों ने तुम्हारा दिमाग़ इस हद तक ख़राब कर दिया है ? तुम इतने नीचे हो गए हो कि एक ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने का गर्व भी अनुभव नहीं कर सकते ? मुझे अफ़सोस है कि मेरे घर में ऐसी सन्तान पैदा हुई। लेकिन याद रखो मैंने जिन्दगी भर दुनिया को अपने रास्ते पर चलाया है, उसके बताए हुए रास्ते पर नहीं चला हूँ। तुम भी इस काम में कामयाब न हो सकोगे। मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि तुम शहर नहीं जाओगे।

रवी : लेकिन मैं मजबूर हूँ। मुझे शहर जाना होगा।

पिता : (**गर्ज कर**) रवी !

गोविंद : पिता जी ! (**रवी से**) यह क्या कह रहा है रवी ? तू पिता जी का स्वभाव अच्छी तरह जानता है। नादान न बन। (**पिता से**) आप खामोश हो जाइये पिता जी। मैं रवी को मना लूँगा। आप ज़रा बैठक में चले जाइये।

पिता : चला जाता हूँ। लेकिन गोविंद, सब लोग कान खोल कर सुन लो। यह घर मेरा है। यहाँ केवल एक आदमी है जिसकी

हठ चलती है। मैंने हर उस आदमी का सिर कुचल दिया है, जिसने मेरे खिलाफ़ सिर उठाने की कोशिश की है। मैं नर्मी और प्यार का क़ायल ज़रूर हूँ, मगर एक हद तक। भाई, बहू, बेटा, बेटी सब उस हद तक मुझ से फायदा उठा सकते हैं, जिस हद तक वे मेरे बताए हुए रास्ते पर चलते हैं। बहके हुए क़दमों और गुस्ताख़ निगाहों को, मेरे घर में पनाह नहीं मिल सकती।

[बाहर चले जाते हैं। पर्दा गिरता है, कुछ ही क्षण बाद जब पर्दा उठता है तो रवी को उसकी भाभी, बहन घेरे हुए हैं।]

भाभी : लाला जी मान जाओ। इस बात को दिल से निकाल दो।

कमला : भैया, यह तुमने क्या सोचा है ? ज़रा सोचो तो, हमने क्या-क्या आस लगा रखी थीं। हमारे क्या-क्या अरमान थे। हमने तुम पर ही मन रखा था।

रवी : कमला, तुम भी यही बातें कहती हो ? आख़िर कौनसी बात है, जो तुम सब लोग इस क़दर घबरा गए हो, निराश हो गए हो, हौसला छोड़ बैठे हो। में एक खत्री की लड़की से शादी कर रहा हूँ, तुम लोगों के हक़ से तो इनकार नहीं कर रहा। तुम लोगों से दूर तो नहीं हो रहा।

माँ : यह दूर होने का रास्ता नहीं तो और क्या है ? शादी करने के बाद भला वह तुझे घर में घुसने देंगे ? उन्होंने साफ़ कह दिया है कि मैं घर के हर आदमी को एक मौका देता हूँ। अगर इसके बाद भी वह अपनी बात से न डिगेगा तो फिर उसका इस घर से कोई वास्ता न होगा। (**रोकर**) रवी, मेरे बुढ़ापे का ख़्याल कर। मैंने सारी जिन्दगी दुख ही भोगा है। तू तो मुझे अब कुछ सुख भोग लेने दे बेटा।

भाभी : लाला जी, तुम अम्मा जी का ख़्याल करो। आख़िर ऐसी

कौनसी बात है उस लड़की में, जो उसको नहीं छोड़ सकते। मैं तुम्हें उससे अच्छी, खूबसूरत और क़ाबिल लड़की दिला सकती हूँ। मगर ऐसा काम न करो, जिससे कुल को दाग़ लगे।

रवी : इस शादी से कुल को दाग़ लगेगा ? भाभी तुम ग़ैर ज़ात में शादी को इतना बुरा समझती हो ?

कमला : हाँ ! तुम ही बताओ नक्कू बनना, दुनियां से हट कर चलना, कोई अच्छी बात है ? और तुम अच्छे-बुरे की मत सोचो, यह सोचो कि आज माँ और पिताजी के दिल पर क्या बीत रही है। उन्होंने तुम्हारी शादी के क्या-क्या सपने देखे थे। माँ इसी आस में बूढ़ी हो गई कि उसका बेटा घोड़ी पर चढ़कर ड्योढ़ी से निकलेगा। हम भाभी का मुँह देखने को आज तक तरसते हैं। लेकिन अब तुम ब्याह करने पर तैयार हुए हो तो खत्री घराने में कर रहे हो। क्या यहाँ रह कर तुम्हारी शादी हो सकती है ? क्या कोई बिरादरी वाला आकर ब्याह में बैठेगा ? बिरादरी वाले हमारे घर के छुए बेर भी न खाएँगे।

रवी : (**विद्रोहपूर्वक**) वे लोग न आएँ न आएँ। मैं उनकी परवाह नहीं करता। मुझे उन लोगों से कुछ नहीं लेना।

माँ : हाँ, तुझे उनसे कुछ नहीं लेना—तू शहर में जो रहता है। जन्म तो हमारा ख़राब होगा। तू तो ब्याह रचा कर बैठ जाएगा, खुश रहेगा, मुँह न दिखाने के काबिल न रहेंगे तो हम। बिरादरी मुँह खोल कर बोलने भी न देगी। कोई तेरे बापू को हुक्का तक न देगा।

कमला : माँ ! तू तो घर में बैठ कर औरतों के तानों से बच जाएगी, लेकिन मेरा क्या होगा माँ ? मेरी सास ननदें तो मुझे तोड़-तोड़ कर खा जाएँगी। भैया, कुछ तो ख्याल करो। मेरी ज़िन्दगी वैसे ही ख़राब है। बात-बात पर सास, ननदें, जिठानियाँ ताने

देती हैं। अगर तुमने कुछ ऐसा-वैसा कर लिया तो मरन हो जाएगा। मैं तो फिर तुम्हारा नाम तक न ले सकूँगी। (**रो पड़ती है**)

भाभी : रो मत बीबी जी, रो मत। लाला जी मान जाओ। हम सब की ख़ातिर मान जाओ। देखो, सारा घर भर दुखी है। सब की भूख प्यास मर गई है। छोटी-मोटी बात होती तो मान जाते। तुम्हारे भैया को मैं मना लेती। पर सदा का मामला है। तुम्हारे भैया के आगे ये पाँच लड़कियाँ हैं। चार साल बाद इनके ब्याह की बात उठेगी। तुम अपनी लड़कियों को ज़ात-बे-ज़ात में दे दोगे, पर तुम्हारे भैया क्या करेंगे? तुम्हारी भतीजियों को कोई ब्राह्मण न लेगा। किसी की ख़ातिर न सही, तो उनकी ख़ातिर ही मान जाओ। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।

पिता : (**बाहर से आकर**) बहू, यह ज़ालिम और जल्लाद है। यह किसी की ख़ातिर नहीं मानेगा। हट जाओ तुम इसके पास से। यह इस काबिल नहीं कि तुम्हारे बीच बैठ सके। इसकी आत्मा पतित हो चुकी है। यह कीचड़ का कीड़ा बन कर नाली में रहना चाहता है, इसे अब सिंहासन की ज़रूरत नहीं।

माँ : (**बीच में आकर**) तुम जरा चुप भी रहो। यह मान जाएगा। अपनी भाभी और बहिन की बात मान जाएगा।

पिता : यह अगर ऐसा ग़ैरतमन्द होता तो अपनी माँ के बराबर भाभी से पैर पकड़वाने के बजाए खुद उसके पैरों में न गिर जाता? यह खानदान में एक साँप घुस आया है। यह किसी के प्यार और दुलार का हक़दार नहीं है। (**रवी से**) खड़े हो जाओ तुम। खड़े हो जाओ और निकल जाओ इसी समय घर से। मुँह न दिखाना फिर कभी अपना। निकल जाओ।

[रवी सहसा उठ खड़ा होता है और मुड़ने लगता है।]

कमला : (**प्रार्थना के स्वर में**) पिताजी।

[**रवी ठहर जाता है।**]

पिता : रुक क्यों गए ? अब दूर हो जाओ इस मनहूस सूरत को लेकर।

भाभी : माँ जी, जरा इनके बड़े भैया को बुला लो। वह चाचाजी को बाहर ले जाएँगे। माँ जी, तुम पिताजी को रोक लो।

पिता : बहू ! तुम अन्दर जा कर बैठो। हम जानते हैं तुम में वे सब ख़ूबियाँ हैं जो बड़े घराने की बेटियों में होती हैं। हमारी आत्मा तुम्हें आशीर्वाद देती है। लेकिन इस ज़हरी और नालायक़ की हिमायत न करो। यह ख़ानदान के लिए ख़तरा बन गया है। इस ख़तरे को दूर करना होगा।

माँ : लेकिन इसे सोचने दो। दो घड़ी रुक जाओ। इसने कुछ खाया नहीं है। खाना तो खा लेने दो। फिर लड़ लेना।

पिता : एक तरफ़ हट जाओ। तुम्हारी मुहब्बत ही ने तो यह दिन सब को दिखाया है।

माँ : चलो सारा क़सूर मेरा ही सही पर ज़रा ठहर जाओ। यह मान जाएगा।

पिता : यह कभी नहीं मानेगा। यह मेरी नाक काट के रहेगा। मगर मैं भी इसे जड़ से काट कर न फेंक दूँ तो ब्राह्मण वंश से नहीं। निकल जाओ मेरे घर से।

माँ : (**सामने डट कर**) यह नहीं जाएगा भूखा प्यासा इस घर से।

कमला : (**भयभीत होकर**) माँ तुम यह क्या कर रही हो। पिताजी की आँखें देखो। वे लाल अंगारा हो रही हैं।

पिता : अपनी माँ को मना ले कमला। मैं बहू-बेटी के सामने इसके हाथ लगाना नहीं चाहता।

रवी : (**आगे आकर**) आपको इसकी ज़रूरत न होगी। मैं खुद ही चला जाऊँगा।

माँ : (**रोकर**) नहीं, नहीं। तू नहीं जाएगा। मेरे जीते जी तू इस घर से भूखा प्यासा नहीं जाएगा। मैं सिर फोड़ कर मर जाऊँगी।

रवी : माँ! तुम बीच में मत आओ। मुझे जाने दो। मैं तुम्हारे स्नेह और आँसुओं को कभी न भूलूँगा। मुझे जाने दो।

माँ : नहीं, नहीं। तू नहीं जाएगा। जो मुझे कन्धा देकर गंगा घाट पहुँचाता, वह इस घर से भूखा प्यासा नहीं जाएगा, नहीं जाएगा।

कमला : भैया मान जाओ। माँ का जन्म ख़राब न करो।

भाभी : लालाजी आपको अपनी पाँचों भतीजियों की···

रवी : भाभी, मुझे क़सम न दिलाना। मैं जिससे वायदा कर चुका हूँ, उसे दग़ा नहीं दूँगा। उसके साथ वचन न निभाना उसका ही नहीं, माँ, बहिन, भाभी, सबका अपमान करना होगा। तुम सबका हक मैं इसी तरह अदा कर सकता हूँ कि उससे शादी कर लूँ, जो तुम्हारी तरह एक औरत है और जिसकी इज़्ज़त, तुम्हारी इज़्ज़त की तरह अमूल्य है।

पिता : (**और उत्तेजित होकर**) लेकिन अगर उसकी इज़्ज़त का इतना ख़्याल है तो इतना बेइज़्ज़त क्यों है जो मेरे घर में अभी तक खड़ा है? निकल जा इसी वक्त······

माँ : नहीं, यह नहीं जाएगा और अगर यह गया तो इसके साथ मेरी लाश जाएगी।

पिता : तो तू इस का साथ देना चाहती है?

माँ : हाँ, मैं अपने बेटे को नहीं छोड़ूँगी। यह भूखा रहे और मैं पेट भर कर पानी पीऊँ······

पिता : तो तू इसके साथ जा सकती है। लेकिन यह सुन ले, फिर मेरे घर में तेरे लिए कभी जगह न होगी।

माँ : मुझे मंजूर है।

रवी : (**काँप कर**) नहीं माँ। तुम मेरे साथ नहीं जा सकती। मैं तुमको घर के सब लोगों से अलग करके तुम्हारी खुशी ख़त्म करना नहीं चाहता। उस लड़की से वायदा मैंने किया है। इसलिए घर की खुशी से वंचित होने की सज़ा, सिर्फ़ मुझे मिलेगी। मैं अकेला जाऊँगा।

[**जाने लगता है**]

पिता : जा रहे हो तो एक आख़िरी रिश्ता और ख़त्म कर लेने दो। तुमने अपनी नौकरी के दौरान में जो कुछ मुझे दिया है, उससे मैं तुम्हें वंचित नहीं करूँगा। तुम अपने रुपये लेते जाओ।

रवी : मुझे रुपयों की आवश्यकता नहीं, पिता जी। केवल यह आशीर्वाद दीजिए कि जिस तरह आप अपने असूलों पर कायम हैं, मैं भी उसी तरह अपने असूलों पर स्थिर रह सकूँ। (**चला जाता है**)

माँ : (**चीखकर**) रेबो।

[**गिर पड़ती है। पर्दा गिर जाता है।**]

[**वही दृश्य। मां और केशव बातें कर रहे हैं।**]

माँ : आज भी ख़त नहीं आया, तेरे स्कूल के पते पर? मास्टर से पूछा था?

केशव : हाँ माँ? मैंने तो हैडमास्टर से भी पूछा था। पर भैया का कोई ख़त नहीं आया। एक ख़त और डाल दूँ क्या?

[**पिता की खाँसी सुनाई देती है।**]

केशव : चुप माँ। चाचा आ रहे हैं।

पिता : (**अन्दर आकर**) केशव, देखो यह खरबूज़े लाया हूँ। इन्हें बालटी में डाल दो। तीसरे पहर तक ठण्डे हो जाएँगे।

केशव : बहुत अच्छा जी।

पिता : हाँ भई, आज दोपहर को क्या बनाने का इरादा है?

माँ : (**भावशून्य स्वर में**) जो तुम कहो ।

पिता : हर बात को मैं कहूँ ? घर में और कोई कहने वाला ही नहीं रहा ?

माँ : तुमने कहने किसको दिया है । यह घर हुकम ही से तुम्हारे चलता है ।

पिता : देख, आज तूने फिर लड़ने की ठान रखी मालूम होती है ।

माँ : (**साँस छोड़ कर**) मैं लड़ने की क्या ठानूँगी ? जब बेटा गया तब ही छाती पर पत्थर रखकर चुप हो गई । अब क्या लड़ूँगी ।

पिता : मैंने क्या तुझे रोका था ?

माँ : तुमने मुझे रोका ही कब ? तुमने तो सदा मुझे घर से निकालने की धमकी दी है । वह तो मैं ही थी जो अपने बाप की लाज को पची, लात-धमूके खाए, पर दहलीज से बाहर पाँव न धरा । तुमने मेरे साथ कौनसी कसर छोड़ दी है ।

पिता : देख, मुझे यही पसन्द नहीं कि तू लेती है एक बात और जा पहुँचती है दूसरी पर । क़सूर बेटे का और इलज़ाम मेरे पर धरती है । बेटे को अगर तेरा मोह होता तो घर से क्यों जाता ? आज उसे छः महीने हो गए घर से निकले । एक बार भी अपनी माँ को झाँकने न आया ।

माँ : तुम आने दो हो न उसे ।

पिता : मैंने तो पहरेदार बैठा रखे हैं न दरवाज़े पर ?

माँ : तुम्हारी एक आँख सौ पहरेदारों के बराबर है । जानता ना है कि अगर तुम्हें उसके आने का पता चल गया, तो मुझे चुटिया पकड़ कर घर से बाहर खड़ा कर दोगे । वह तो मेरी इस उम्र में मेरी मिट्टी खराब करवाना न चाहवे है ।

पिता : अरे मेरे सिर क़सूर क्यों मढ़ती है । अगर उसे आना हो तो क्या आने से रुक सकता है ? और तू समझती है कि मुझे कुछ नहीं मालूम ? मुझे मालूम है कि वह नहीं आता, पर

तेरे पास उसकी खुफ़िया चिट्ठियाँ आती हैं।

माँ : मेरे पास ? मैं पढ़ी-लिखी हूँ न।

पिता : तेरा यह बेटा तो पढ़ा-लिखा है। मैं सब जानता हूँ। (**गहरी साँस लेकर**) बेटा अपनी माँ की ओर ही झुकता है। जिस दिन तेरे पास उसका ख़त आता है, मैं तेरे चेहरे को देखकर भाँप जाता हूँ। उस दिन तेरे चहरे पर एक अनोखी चमक होती है—सूखे खेत में जैसे फुहार पड़ जाती है। तू बोलती कुछ नहीं, मगर तेरा रोम-रोम फूलों की तरह खिल उठता है। (**गहरी साँस छोड़ कर**) इस घर में ज़ालिम तो मैं हूँ—बेटा-बेटियों की ज़रूरत नहीं, तो मुझे नहीं।

माँ : हाँ, तुम्हें नहीं। तुम्हें उनकी कभी ज़रूरत न रही। जब वे छोटे थे तो तुमने उन्हें गोद में लेकर न खिलाया। रात को वे रोए तो तुमने उनकी चारपाइयाँ उलट दीं और उन्हें जमीन पर पटक दिया। उन्हें तुमने कभी अपनी रोटी से टुकड़ा तोड़ कर न दिया। बड़े हुए तो सिवाय लाल-लाल आँखें दिखाने के तुमने उन्हें कभी प्यार से न बुलाया। और जब उन्होंने कोई गलती की, तो तुमने उन्हें घर से निकाल दिया।

पिता : मेरा दिल पत्थर का है न ?

माँ : पत्थर का नहीं लोहे का। बल्कि लोहा भी आग से पिघल जाता है। पर तुम……

पिता : पर मैं नहीं पिघलता। (**गहरी साँस लेकर**) आज घर में सबसे ज़्यादा, ज़ालिम, कठोर और जल्लाद मैं ही हूँ। किसी दूसरे में कोई क़सूर नहीं ? न तुझ में, न तेरी औलाद में। ….मैंने कितनी मेहनत और तकलीफ़ों से रुपया कमाया है। अपने ऊपर कितनी सख़्ती करके उसे बचाया है और औलाद के लिए मकान-दुकान खड़े किए हैं। उन्हें पढ़ा-लिखा कर

लायक़ बनाया है। उसका कोई हिसाब नहीं ?······मैं भी दुनिया के बापों की तरह ऐश कर सकता था। जो कुछ कमाता, सब कुछ फूँक कर रंग रलियाँ मना सकता था। ऊपरी शान और मुहब्बत दिखा कर औलाद को बिगाड़ सकता था और कर्ज़दार होकर मर सकता था। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि मैं जानता था लोहा तपाने से और चोटें लगाने ही से पक्का होता है। और जो बाप अपनी औलाद को तपा कर और सख्ती करके फ़ौलाद की तरह मज़बूत नहीं बनाता, वह उनके और भगवान्, दोनों के साथ ग़द्दारी करता है।

माँ : पर तुमने यह तो सोचा होता कि मैं माँ हूँ। मेरा कलेजा पत्थर का नहीं हो सकता। मैं जीते जी कैसे अपने हाड़-माँस के टुकड़ों से अलग रह सकती हूँ। बन्दरिया का बच्चा मर जाता है तो वह भी छः महीने तक उसे अपनी छाती से लगाए रखती है। बछड़े को कोठरी में बाँध आती हूँ और वह गाय को दिखाई नहीं देता तो वह भी रंभा-रंभा कर बावली हो जाती है। फिर मैं कैसे सब्र करूँ ?

पिता : और मैं ? मुझे तो दुख होता ही नहीं ? मुझे तो अपना बेटा याद आता ही नहीं ?···मगर तू तो कह चुकी है मैंने कभी बेटे-बेटी के लिए प्यार दिखाया ही नहीं। ठीक है, इस जन्म में तुझे अपनी हालत अनुभव न करवा सकूंगा। लेकिन काश, अगले जन्म में तू बाप बने और फिर महसूस करे कि कुल की मर्यादा और औलाद की भलाई का विचार, उसे क्या-क्या करने पर मजबूर कर देता है।

[बाहर चला जाता है और मकान के पिछले दरवाजे पर थपकी सुनाई देती है। रवी अन्दर आता है, उसके कपड़े मैले हैं और दाढ़ी बढ़ी हुई है।]

रवी : माँ !

माँ : **(उससे चिपट कर)** मेरे बेटे, मेरे रेबो। यह तूने अपना हाल क्या कर लिया ?

रवी : कुछ नहीं माँ। कुछ नहीं। माँ मुझे माफ़ कर दो। मैंने तुम्हें बड़ा दुख दिया है। मैं तुम्हारे प्यार के लायक़ नहीं हूँ। मैंने तुम्हारे दूध का हक़ अदा नहीं किया।

माँ : पर मुझे कुछ नहीं चाहिए रेबो। मुझे किसी से कुछ नहीं लेना। तुम सुखी रहो, फूलो-फलो, यही देखते हुए मेरी आँखें मुँद जाएँ।

रवी : ऐसी बातें मत करो माँ। तुम्हें अभी बहुत वर्ष जीना है।

माँ : अब मैं बहुत वर्ष नहीं जीऊँगी। रेबो, मेरे सदमा बैठ गया है। तीनों बेटों में से मैंने तुझी को अपने बुढ़ापे की लाठी समझा था। मगर तू तो मेरे होते हुए इस घर में पराया हो गया है। तू परदेस में जाने भूखा रहे है जाने प्यासा रहे और मैं इस घर में पेट भर कर खाऊँ—कोई डायन माँ होगी जो ऐसे खाकर सोएगी। देख तो, मेरा क्या हाल हो गया है। बस एक तार रह गया है, किसी दिन यह भी टूट जाएगा।

[कंठ रुंध जाता है]

रवी : माँ, मेरी माँ, मुझे माफ़ कर दे। मुझसे यह बातें न कह, वरना मेरा कलेजा फट जाएगा। मेरी आत्मा में वैसे ही एक काँटा हर समय चुभता रहता है। मैं रातों को सो नहीं सकता। तेरे साथ अन्याय का विचार मुझे हर समय डसता रहता है। लेकिन मैं क्या करूँ। मैं एक लड़की को धोखा देकर तेरी पूजा नहीं कर सकता। मैं अपनी माँ पर गंगाजल के बजाय एक दूसरी औरत का खून नहीं चढ़ा सकता। मेरी आत्मा काँपती है इस विचार से।

माँ : तो फिर तू उससे ब्याह कर ले। अपने को मत जला, उसको मत तरसा।

रवी : पर तुम ? तुम्हारी ख़ुशी, तुम्हारे अरमान ? माँ क्या यह नहीं हो सकता कि मैं दोनों वचन निबाह सकूं। मेरा धर्म बच जाए और किसी की आँख में आँसू न आएँ ? माँ उस लड़की के साथ-साथ क्या मैं तुमको ख़ुश नहीं कर सकता ?

माँ : **(आह भर कर)** मेरी ख़ुशी तो ख़त्म हो गई रेबो। सुख मेरी किस्मत में लिखा ही नहीं। सारे जन्म तेरे बापू की जूतियाँ सहीं। औलाद हुई तो सोचा कि आख़िरी उमर में सुख भोगूँगी। सो भी छिन गया। मुझे तो सुख अब चिता की लकड़ियों में ही·······

रवी : **(बीच में टोक कर)** माँ !

माँ : हाँ रेबो। इसमें तेरा भी दोष नहीं। तुझे ही कौन सा सुख नसीब हुआ है। जब सुख मिलेगा देखा जाएगा। अभी तो तेरे माँ-बाप के लाड़ प्यार के तले रहने के दिन थे।

रवी : पर क्या पिता जी नहीं मान सकते माँ ? क्या वह किसी तरह भी मेरी शादी अपने हाथ से नहीं कर सकते ? मैं पाँच-दस साल तक रुक सकता हूँ माँ ?

माँ : अरे रेबो, पागल हुआ है क्या ? यह बात कभी न होने की है। इसके आसरे मत बैठा रह। तेरे बापू कभी न मानेंगे। सबने कह कर देख लिया, पर वह नहीं मानते। दिन-रात घर में क्लेश रहता है। अब जो कुछ तुझे करना है, कर डाल। जब तक तू शादी नहीं करेगा, घर का क्लेश ख़त्म नहीं होगा। अब कब तक मेरी जान को मुसीबत में डाले रखेगा। देख, अगर ज्यादा दिन यूंही चलता रहा तो मैं बैठी बैठी छन में उड़ जाऊँगी और तू रोता ही रह जाएगा।

रवी : **(रोते हुए)** अच्छा माँ, अच्छा। मैं अब जाते ही ब्याह कर

लूँगा। मगर तू मुझे माफ़ कर दे।

माँ : क्या माफ़ करूँ रेबो। मैं अपनी आत्मा को कैसे कुचल डालूँ। तू ब्याह कर लेगा और मैं यहाँ कोठरी में मुँह दिए पड़ी रहूँगी। सबके होते तुझे कोई हल्दी-तेल मलने वाला न होगा। तेरे घोड़ी चढ़ने की बेला कोई बन्ने भी न गाएगा। रेबो, जिस दिन तेरा ब्याह होगा, मेरा कलेजा टूट-टूट जाएगा।

[खाँसने की आवाज सुनाई देती है और केशव बाहर से भागा-भागा आता है।]

केशो : माँ, माँ, पिताजी आ रहे हैं।

रवी : (**घबरा कर**) कहाँ ? क्या वह बाज़ार से आ गए ? माँ मैं जाता हूँ।

माँ : हाँ जा। यह मेरे फूटे भाग हैं कि अपने बेटे से भी चोरों की तरह मिलती हूँ। (**रो पड़ती है**)

रवी : रो मत माँ, मेरा रास्ता कठिन न बना। मैं पागल हो जाऊँगा।

माँ : अच्छा, अच्छा। जा। पर ठहर। यह मेरे गले की माला लेता जा। अपनी बहू को पहना दीजियो। कहियो उस अभागिन सास ने दी है, जिसके भाग में अपनी बहू का मुँह देखना भी नहीं लिखा।

रवी : मेरी माँ।

[रो पड़ता है। और झट से पिछले दरवाज़े की ओर बढ़ता है। परदा गिर पड़ता है।]

× × ×

[वही दृश्य, मगर रात का अँधेरा है। उस अँधेरे में दो चारपाइयाँ नजर आती हैं। रवी के पिता अपनी चारपाई पर बैठे हुए हैं और दूसरी चारपाई की ओर देख रहे हैं।]

पिता : सो गई ?

[ख़ामोशी]

पिता : मैंने कहा सो गई ?

[ख़ामोशी]

पिता : देख मैं कहता हूँ मुझे परेशान मत कर।

माँ : (**थोड़ा उठ कर**) मैं तुमसे क्या कह रही हूँ ?

पिता : तो फिर तू कैसे पड़ी है ?

माँ : नींद आ रही है।

पिता : और खाना क्यों नहीं खाया ?

माँ : भूख नहीं लगी।

पिता : देख, तू मुझ से मत छिपा। आज सुबह से तू टूटी-टूटी हो रही है। क्या रवी बीमार है ?

माँ : मुझे कुछ नहीं पता। मुझे मत छेड़ो, मुझे सोने दो।

पिता : तू सो नहीं रही है, तू अपना कलेजा मसोस रही है। तेरा सारा शरीर मुड़ा जा रहा है। क्यों मेरी ज़िन्दगी ख़राब कर रही है ?

माँ : (**उठ कर आँसुओं से रुँधे लहजे में**) मैं तुम से क्या कह रही हूँ ? तुम मुझे मुँह ढक कर एक कोने में पड़ने भी क्यों नहीं देते ? मुझे ज़्यादा कहोगे तो मैं कहीं मुँह काला करके चली जाऊँगी।

पिता : (**गहरा निःश्वास छोड़ कर**) यह मैं जानता हूँ कि तू अब मरने को फिर रही है। अब तू भी मेरा साथ छोड़ना चाहती है।

माँ : मैं ? मैं छोड़ूंगी तुम्हारा साथ। तुम कह दो अपने कलेजे पर हाथ रख के कि मैं तुम्हारा साथ छोड़ना चाहती हूँ। मैंने अपनी सारी जिन्दगी तुम्हारे साथ ख़त्म कर दी। जिसने तुम्हारे लिए अपना बेटा तक छोड़ दिया, तुम उसके लिए

ऐसा बोल बोलते हो ? मत करो मेरा कलेजा छलनी। मैं वैसे ही मर रही हूँ।

पिता : (**आहत होकर, बड़े मार्मिक स्वर में**) मैं तेरा कलेजा छलनी करना चाहता हूँ ? तू भी इस उम्र में मुझसे यही कहती है ? सारी उम्र मेरे साथ रह कर भी तूने मुझे इतना ही समझा है ? तुझे मार कर मैं किसके लिए जीऊँगा ? मेरे लिए अब यहाँ कौन रह गया है ?

माँ : तुम्हारे लिए ? तुम्हारे लिए सब कुछ रह गया है। नहीं रहा तो मेरे लिए नहीं रहा। मेरा बेटा कल ब्याह करे और मैं यहाँ......

[**रो पड़ती है**]

पिता : (**चौंक कर**) क्या ? क्या रवी कल ब्याह कर रहा है ? तुझे किसने कहा ?

[**ख़ामोशी**]

पिता : मैं समझ गया। तेरे पास ख़त आया है ? तूने मुझे बताया भी नहीं ?

माँ : बस-बस रहने दो मेरे छाले मत छेड़ो। जो तुम्हें यह जानने का चाव होता, इसकी खुशी होती, उमंग होती तो बेटा मेरे घर से क्यों निकलता ? आज के दिन वह बे-माँ के लाडले की तरह क्यों बिना हल्दी-तेल रहता ? क्यों उसके हाथ में कंगना न बंधता ? क्यों आज मेरी ड्योढ़ी सूनी होती ? क्यों मैं यूँ आँसू पी-पी कर आतमा को मसोस रही होती ?

[**बिलख उठती है।**]

पिता : और यह सब कुछ मेरे कारण हुआ ? क़सूरवार मैं ही हूँ ?

माँ : (**रोते हुए आवेश में**) हाँ तुम। तुमने ही सब कुछ किया। तुमने ही मेरी सारी खुशी ख़त्म कर दी। दुनिया में ऐसे ब्याह होते हैं। दुनिया ग़ैर जात में शादियाँ करती है। तुम

आज तक दुनिया से लड़ते आए हो, लोगों को ठुकराते आए हो। लेकिन इस काम के लिए, अपने बेटे की शादी के लिए, तुम न लड़ सके। तुमने उसे घर से निकाल दिया।

पिता : (**बड़े मर्म के साथ**) मुझे शौक था बेटे को घर से निकालने का? मैं चाहता था कि मेरा बेटा एक यतीम की तरह अकेला शादी करने जाए? तू अपने दिल से कहती है यह बात?

मां : हाँ! यह नहीं था तो क्या था? तुम दुनिया से टक्कर ले सकते थे। वे हमारे ब्याहने को और कोई बेटी नहीं थी। पोतियों के ब्याह अ.ी किसने देखे। जिसकी नाक पर चाँदी का जूता मारते, वे उनको ब्याह ले जाता। लेकिन इस बुढ़ापे में तुम्हारी हठधर्मी और बिरादरी का पंच चौधरी बने रहने की चाह कम न हुई। तुम्हें बेटे से ज्यादा अपनी हठ प्यारी है।

पिता : मुझे रवी से ज़्यादा अपनी हठ प्यारी है? तू अपने दिल से कह रही है? तुझे क्या मालूम जब से रवी गया है मेरा चैन, सुख, शान्ति जब ख़त्म हो गये हैं। मैं रातों को सोते-सोते उठ बैठता हूँ और फिर जैसे कोई मेरा गला दबोच लेता है। न मैं चीख़ सकता हूँ, न चिल्ला सकता हूँ, और एक न सही जाने वाली पीड़ा आँसू मेरी आँखों से खून की बूँदों की तरह चूने लगते हैं।······मैंने उससे कितनी उम्मीदें लगा रखी थीं। आज भी मेरे कानों में वह शहनाइयाँ गूँजती हैं, जो उसकी शादी पर बजतीं। आज भी मेरी आँखों के सामने वह रोशनियाँ, वे नज़ारे चक्कर काटते हैं, जो उसकी शादी पर होते। रवी ने बड़ी बेदर्दी से मेरे अरमानों का ख़ून कर दिया।

माँ : और उसका बदला तुमने मुझसे लिया है? मुझे अपने बेटे से अलग करके तिल-तिल जलने को छोड़ दिया है?

पिता : तो अब तू चाहती क्या है? साफ़-साफ़ बता। तू मुझसे क्या

करवाना चाहती है ?

माँ : मैं ?, मैं क्या चाहूँगी । अब चाहने को मौत के सिवा रह ही क्या गया है । जो कुछ रहा है वह कल खत्म हो जाएगा । फिर मुझे अपना कन्धा देकर गंगा किनारे राख कर आना ।

[**फूट-फूट कर रो पड़ती है ।**]

पिता : (**अपनी भावनाओं के टूटते बाँध को सँभालते हुए**) देख, इस तरह मत कह । मुझसे वह काम न करवा, जो मैंने जीवन भर नहीं किया है । मेरी आँखों में आँसू देखने की कोशिश मत कर । तू कहती है तेरे लिए जिन्दगी में कुछ नहीं रहा । लेकिन मेरे लिए भी क्या रह गया है ? शरीर मेरा जवाब दे गया है । बेटियाँ पराई हो गईं । बेटे बागी हो गए । सब मुझ से अलग और बेज़ार हो गए हैं ।

माँ : लेकिन यह तो जग की रीत है । बरगद भी बूढ़ा हो जाता है तो उसके तने, बूढ़ी जड़ के सहारे रहने की बजाय, अपनी नई जड़ें अलग जमा लेते हैं । तुमको तो खुश होना चाहिए कि तुम्हारे बेटे तुम्हारी तरह हैं । वे दूसरों के सहारे नहीं, अपने बल पर खड़े होते हैं । वह भी दुनिया के रास्ते पर चलने के बजाय, दुनिया को अपने रास्ते पर चलाते हैं । वह झुकते नहीं हैं, दुनिया को झुकाते हैं ।

पिता : (**विस्मय से**) तू······तू यह क्या कह रही है ?

माँ : जो मुझ गंवारिन को दीखता है । तुम किन से टक्कर लेने चले हो ? अपनों से ? भला कोई अपनों से लड़ा है ? भला कोई अपनों से जीता है ? और जो जीता है वह अपनों को तोड़ कर, अपनों को हरा कर कभी खुश हुआ है ?····तुम उनकी जीत को अपनी जीत क्यों नहीं समझते ? उनकी हठ को अपनी हठ क्यों नहीं समझते ? आखिर वह हैं किसके ? क्या वे तुम्हारे अपने नहीं हैं ?

पिता : **(जैसे रोशनी दिखाई दी हो और एक नए संकल्प ने पुरातन विचारों की जगह ली हो)** रवी की माँ ! बस, अब तू और न कह । अगर रवी की हठ में मेरी हठ है, अगर रवी की खुशी में मेरी खुशी है, अगर उसकी शादी में मेरे और तेरे ही अरमान पूरे होते हैं तो चल, उठ । वह अकेला शादी नहीं करेगा । उसका सेहरा हम सजाएँगे ।

माँ : **(प्रसन्नता से कँपकंपाते हुए)** क्या ?

पिता : **(दृढ़ता से)** हाँ, अब रवी अपनी शादी आप नहीं करेगा । उसकी शादी हम करेंगे....हम...तू और मैं ।

[**समाप्त**]

दुश्मन

पात्र

आसुतोष :	एक नवयुवक
नरेश :	आसुतोष का मित्र
सरोज :	आसुतोष की पत्नी

[आसुतोष का कमरा। आसुतोष और उसका दोस्त, नरेश बठे हैं। पास ही एक सूट केस रखा है, जिससे मालूम होता है कि नरेश अभी-अभी आया है।]

आसुतोष : सच नरेश, इतने बरसों बाद तुमसे मिलकर आज कितनी खुशी हुई है।

नरेश : और मुझे कितना ताज्जुब।

आसुतोष : ताज्जुब ?

नरेश : हाँ। कभी ख़याल भी न होता था कि तुम जैसा आदमी, ज़िन्दगी के किसी दौर में इस तरह रहेगा—एक खूबसूरत मकान, नफ़ीस फ़रनीचर, सलीके से रखी हुई चीजें। भूल गए कि तुम होस्टल में किस तरह रहा करते थे ? तुम्हारा कमरा होस्टल भर में सब से गन्दा, और तुम सबसे ज़्यादा बेढंगे थे। तुम्हारे कमरे में हर चीज़ फैली नज़र आती थी। तुम्हारा बिस्तर ज़मीन पर, तुम्हारी किताबें चारपाई पर, तुम्हारे कपड़े किताबों की मेज़ पर, और तुम्हारा शीशा कन्घा ट्रँक के पीछे पड़ा रहा करता था। और तुम्हारे जूते,—अगर एक दरवाज़े के पीछे पड़ा होता था तो दूसरा तुम्हारे सिरहाने दबा निकलता था।

आसुतोष : (हँसते हुए) और दूध के ख़ाली कुल्हड़ों की बात तो भूले जा रहे हो दोस्त।

नरेश : अरे हाँ। हलवाई की दुकान के बाद तुम्हारे ही कमरे में कुल्हड़ों का ढेर नज़र आता था। तुम इतने आलसी थे कि दूध पीकर कुल्हड़ों को कमरे के फ़र्श पर ही लुढ़का दिया

करते थे। याद है हम लोग तुम्हारे कमरे को क्या कहा करते थे ?

आसुतोष : डस्टबिन (हँसता है)

नरेश : और ख़ुद तुमको डर्टी मोंसटर। यक़ीन मानो, इन सालों में कई बार तुम्हारी शक्ल याद करके हँसा हूँ। तुम्हारा वह लम्बा क़द, झुकी कमर, मैली पतलून, बढ़े हुए बाल, और पालिश को तरसते हुए जूते—उन दिनों तुम सचमुच इन्सान नज़र नहीं आते थे।

आसुतोष : चलो खैर, अब तो तुम्हें इंसान नज़र आया ?

नरेश : हाँ और एक ख़ूबसूरत और सजीला इन्सान। तुम्हारा शरीर भर गया है। तुम्हारे चेहरे पर ख़ुश्की की जगह एक चमक आ गई है। तुम्हारे बाल तराशे हुए और सँवारे हुए हैं। यार यह हुआ कैसे ?

आसुतोष : (**गम्भीर होकर**) तुम्हारी भाभी की वजह से।

नरेश : यक़ीनन इसकी कोई और वजह नहीं हो सकती तुमसे तो इस बात की उम्मीद की नहीं जा सकती थी।

आसुतोष : हाँ यार। मैं तो असल में शादी के एक डेढ़ साल तक सरोज के लिए एक समस्या बना रहा। बस यूं समझो कि जहाँ से गुज़रता, चीज़ें फैलाता, तितर-बितर करता चला जाता और मेरे पीछे-पीछे वह बिचारी चीज़ें उठाती फिरती। सुबह को जब दफ़्तर जाता तो इस कमरे की हालत ऐसी होती जैसे भूचाल आया हो। लेकिन शाम को जब लौटता तो हर चीज़ अपनी जगह पर सजी पाता। यही हाल कपड़ों का था।

नरेश : तो यूँ कहो कि भाग्य के धनी निकले।

आसुतोष : हाँ यार, इस मामले में तो भाग्य ही को सराहता हूँ। सरोज ने मेरी ज़िन्दगी बदल डाली है। मुझ पर, इस घर की एक-एक चीज़ पर उसकी छाप है। यहाँ की हर चीज़ में

गोया उसकी ख़ूबसूरती, उसके सुघड़पन और सलीक़े की झलक हैं।

[नरेश उठ कर सरोज के फोटो की ओर जाता है।]

नरेश : यह उन्हीं का फ़ोटो है ना?

आसुतोष : हाँ। और यह मेरी बच्ची है, कुमकुम।

नरेश : तुम्हें याद है, तुम कहा करते थे तुम्हें सुन्दरता चाहिए, लेकिन ऐसी जिसमें उदासी की हल्की-हल्की झलक हो। आभा मुकर्जी को तुम इसीलिए पसन्द किया करते थे न?

आसुतोष : (**चौंककर**) हूँ। यह यकायक कैसे याद हो आया?

नरेश : इसलिए कि तुम्हारी यह चाह भी पूरी हो गई। भाभी की आँखें देखो। कितनी ख़ूबसूरत, कितनी गहरी, कितनी अथाह। लेकिन इसमें उदासी का एक बासी फूल भी पड़ा है, जिसने इन आँखों ही में नहीं, बल्कि इनके पूरे चेहरे में एक नर्मी, एक कोमलता, एक करुणा का भाव भर दिया है। लगता है आँसुओं ने इन आँखों के किनारों को बरसों धो-धो कर पवित्र किया है।

आसुतोष : तुम तो कविता करने लगे।

नरेश : मैंने आज तक कविता नहीं की। मैं तो सिर्फ़ उस भाव को व्यक्त कर रहा हूँ जो भाभी का चित्र देख कर मन में जागा है। आसुतोष, यह उदास-उदास आँखें, और यह थकी-थकी पलकें, इन्सान की थकी हुई आत्मा को अपनी गहराइयों में थपक कर इस तरह सुला सकती हैं, जैसे माँ अपनी गोद में बच्चे को।

आसुतोष : (**हैरानी से**) अजीब बात है नरेश। तुम आज कुछ वही बातें कह रहे हो जो मैंने महसूस की हैं, लेकिन जिन्हें व्यक्त करने की कोशिश नहीं की है। आज मुझे एक बात याद आ रही है। मैं बीमार हुआ था। एक रात मेरी हालत बहुत ख़राब

हो गई। डाक्टर भी गुमसुम सा लौट गया था। सरोज मेरे सिरहाने बैठी थी। यकायक मैंने आँखें उठाकर उसकी तरफ़ देखा। मेरी आँखों में निराशा भी थी, भय भी था, और प्रेम की भीख भी। उसी क्षण यकायक सरोज ने अपना कँपकँपाता हाथ मेरे माथे पर रख दिया और अपनी पलकें कुछ ऐसी बन्द कर लीं, जैसे उसने मुझे अपनी पलकों में छिपा कर रख लिया हो। और मैं ऐसे सो गया, जैसे थका हारा बच्चा निश्चिन्त सो जाता है।

[**बाहर टैक्सी रुकने की आवाज़**]

आसुतोष : अरे लो, शायद सरोज डाक्टर के यहाँ से आ गई।

[**सरोज कमरे में आती हैं**]

आसुतोष : (**परिचय कराते हुए**) सरोज, मेरे दोस्त नरेश।

सरोज : नमस्ते। आप आ गए? मुझे आपके आने का पता था। लेकिन बच्ची को मजबूरन इसी वक़्त डाक्टर के पास ले जाना पड़ा।

नरेश : कोई बात नहीं भाभी। लेकिन बच्ची कैसी है? कहाँ है?

सरोज : अब ठीक है। नौकरानी पिछले दरवाज़े से अन्दर ले गई है। अभी भेजती हूँ। हाँ आप चाय पीने के आदी हैं या किसी ठण्डी चीज़ के?

नरेश : कोई चीज़ भिजवा दीजिये भाभी। मैं चाय के फ़ौरन बाद लस्सी और लस्सी के फ़ौरन बाद दूध पी लेता हूँ।

सरोज : (**तनिक सिहर कर**) नहीं नहीं, ऐसा न किया कीजिए। कभी-कभी हारा शरीर हमारी लापरवाहियों का साथ नहीं देता। अच्छा, मैं अभी चाय लाती हूँ। (**अन्दर चली जाती है।**)

नरेश : आसुतोष, मैं सच कहता हूँ तुम बेहद खुश-नसीब हो।

आसुतोष : अपने मुँह से हाँ करना बुरा लगता है नरेश। पर हाँ कहे बग़ैर रहा नहीं जाता। (**सहसा संजीदगी को दूर करते हुए**)

लेकिन इस बात को छोड़ो। यह तो सुनाओ कि कालेज के और दोस्तों के क्या हाल हैं ? मैं तो सब से आउट-आफ-टच हो गया हूँ।

नरेश : यार हम सबसे अच्छे हैं। यहाँ तक कि तुम जैसे गावदी भी।

आसुतोष : (हँसकर) अच्छा अच्छा। लेकिन यह बताओ श्याम सुन्दर कहाँ है ?

नरेश : वह पिछले दिनों गोरखपुर में डिप्टी कलक्टर था।

आसुतोष : बहुत अच्छा निकल गया ?

नरेश : हाँ, तक़दीर का सिकन्दर है। और यार हमने देखा रट्टू पीर आदमी ज़िन्दगी में आगे नहीं बढ़ता। आदमी डैशिंग होना चाहिये। तुम नारायन को देखो, ऐक्टर बना हुआ है।

आसुतोष : हाँ। उसकी दो तीन तस्वीरें मैंने देखी हैं। काफ़ी चमक गया है। पर यार उसे इस लाइन का शुरू से शौक़ था।

नरेश : चलो, उसे तो इस लाइन का शौक था। मगर उस नामाकूल हसनी को किस बात का शौक़ था। वह घोंघा आज कल ऐडीटर बना हुआ है।

आसुतोष : (हैरानी से) हसनी और ऐडीटर ! यार उसे तो कहीं कानमैलिया होना चाहिए था। मगर यार, इस लिहाज़ से तो अपने साथ के सब लोग ख़ासे अच्छे ज़िन्दगी में सैटल हो गए।

नरेश : हाँ (गहरी साँस लेकर) और तो ज़िन्दगी में कामयाब हो गए लेकिन बेचारा विनोद ?

आसुतोष : विनोद ? तुम्हारा वह दोस्त जो साइंस साइड में था ? उसे क्या हुआ ?

नरेश : उसने आत्महत्या कर ली।

आसुतोष : आत्महत्या ?

नरेश : हाँ। बड़ी दर्दनाक मौत थी।

आसुतोष : पर मेरे होते तो ठीक था। मेरे कालिज छोड़ने के बाद एम० एस० सी० के पहले साल में की होगी ?

नरेश : हाँ।

आसुतोष : मगर तुम तो कहा करते थे वह साइंस में कोई नई खोज कर रहा था ?

नरेश : उसने एम० एस० सी० के पहले ही साल में अपनी थीसिस पूरी कर ली थी। लेकिन मौत उसकी ताक में खड़ी थी।

आसुतोष : हुआ क्या ?

नरेश : क्या बताऊँ, अपना भेद उसने मुझे तब बताया, जब वह पूरी तरह निराशा के सागर में डूब चुका था।

आसुतोष : क्या प्रेम ?

नरेश : हाँ। और उस प्रेम ने उसकी जान तक ले ली।

आसुतोष : लेकिन वह तो बड़ा सीधा लड़का था।

नरेश : इसीलिए तो अपनी जान दे बैठा। वह जितना सीधा था, उतना ही भावुक था। वह किसी से कुछ न कहता था और इसीलिए ज़्यादा महसूस करता था। ज़रा-सी चीज़ उसके लिए एक पहाड़ बन जाती थी और वह उस पहाड़ पर बैठा कर विचारों में इस तरह खो जाता था जैसे चारों तरफ बाढ़ आ रही है, और उसे दुनिया को बचाना है।

आसुतोष : मगर यह हुआ किस तरह ?

नरेश : लड़कियों के कालिज की एक लड़की से उसे प्रेम हो गया। लड़की बहुत बड़े खानदान की थी। उसने लड़की के बाप तक रिश्ते की बात पहुँचाई। लेकिन वह रिश्ता क्यों मंज़ूर करते। विनोद तो किसी मन्दिर के पुजारी का बेटा था। बस, फिर एक दिन दोनों ने घर से भागने की सलाह की। लेकिन रात को लड़की जिस वक्त अपने घर से बाहर निकल रही थी, उसके पिता ने उसे पकड़ लिया। विनोद ने अपनी

आँखों से यह सब कुछ देखा और उसे इतना सदमा हुआ कि पागल ने लेबोरेट्री से साइनाइड निकाल कर चाट लिया।

आसुतोष : उफ़। क्या दर्दनाक अंजाम है। और बिचारी लड़की का क्या हुआ ?

नरेश : हुआ क्या होगा। माँ बाप ने कहीं शादी कर दी होगी।

आसुतोष : लेकिन वह तो जीते जी मर गई होगी। वह भी खुश थोड़ा ही रह सकती है।

नरेश : हाँ, अपना कलेजा मसोस कर जी रही होगी। (**सरोज चाय की ट्रे लिए अन्दर आती है।**)

सरोज : लीजिए, चाय।

नरेश : (**चौंक कर**) ओह !

सरोज : आप लोग कैसे हो रहे हैं ?

आसुतोष : नरेश ने अभी एक दोस्त की बुरी खबर सुनाई है। उसने आत्महत्या कर ली।

सरोज : आत्महत्या ? (**सरोज सिर से पैर तक कांप उठती है। ट्रे हाथ से गिर जाती है। वह खुद लड़खड़ाती है। आसुतोष दौड़ कर उसे सँभालता है।**)

नरेश : भाभी जी, आप को क्या हुआ ?

आसुतोष : तुम्हारा जी तो ठीक है सरोज ?

सरोज : (**सँभलते हुए**) कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मुझे···मुझसे किसी की आत्महत्या की ख़बर नहीं सुनी जाती।

नरेश : आप आराम कीजिए भाभी जी। वह तो मेरा दोस्त था, इन का नहीं।

आसुतोष : तुम अन्दर जा कर आराम करो सरोज, चलो मैं सहारा दूँ।

सरोज : नहीं······ऐसी कोई बात नहीं। आप मुझे क्षमा करें।

नरेश : कैसी तक्कलुफ़ की बातें करती हैं आप। आसुतोष ही को

ऐसी बुरी बात का ज़िक्र नहीं करना चाहिए था। जाओ आसुतोष, इन्हें अन्दर ले जाओ।

[आसुतोष सरोज को अन्दर ले जाता है।]

दूसरा दृश्य

[वही कमरा। आसुतोष और सरोज बैठे हैं। सरोज कपड़े पर फूल निकाल रही है।]

सरोज : **(घबराए स्वर में)** नरेश अभी तक नहीं आए।

आसुतोष : आ जाएगा। उसके दूर के रिश्तेदार यहाँ रहते हैं। उनसे मिलने गया है।

सरोज : लेकिन बहुत रात हो गई। उन्हें अब तक आ जाना चाहिए था।

आसुतोष : तुम बड़ी जल्दी घबरा जाती हो। वह इस शहर में नया थोड़ा ही है। आ जाएगा।

सरोज : **(कुछ क्षण चुप रह कर)** अपने पुराने दोस्तों से मिल कर बड़ा अच्छा लगता होगा न ?

आसुतोष : बहुत अच्छा, और ख़ास तौर पर उस वक्त, जब वह पहले जैसे प्यार और बेतकल्लुफ़ी से मिलते हैं। नरेश के दिल में मेरे लिए पहले जैसी मुहब्बत है। इस से ज़्यादा ख़ुशी की बात यह है कि तुम भी उसे पसंद आई हो। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा कर रहा था।

सरोज : मेरी ? मुझ में ऐसा क्या है ?

आसुतोष : **(भावुकता से)** तुम में क्या है ? मैं नहीं जानता तुम में क्या

है सरोज। लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि तुम्हें पाने के बाद मुझे किसी और चीज़ के पाने की चाह नहीं रही। इन्सान कुछ सपने देखता है, कुछ चीजों की कल्पना करता है, उसकी आत्मा किसी के प्यार के लिए भटकती है—तुम्हें पाकर मुझे वह सब कुछ मिल गया है। मेरा जीवन मेरे लिए सुख और शान्ति से इतना परिपूर्ण हो गया है कि मुझे समय के बीतने का भी आभास नहीं होता।

सरोज : बस बस, और ज़्यादा मत कहिए। **(यकायक उदास होकर)** मैं इतनी अच्छी नहीं हूँ। यह तुम्हारा प्यार है, जो मैं तुम्हें ऐसी दिखाई देती हूँ।

आसुतोष : अरे तुम फिर उदास हो गईं ? सरोज यह क्या बात है ? जब कभी मैं अपने मन की बात तुम से कहने लगता हूँ, अपना प्यार जताने लगता हूँ, तुम उदास हो जाती हो। तुम्हारी पलकें बन्द हो जाती हैं और उनसे आँसू टपकने लगते हैं। तुम तो अपना प्यार जता लेती हो—मेरी एक एक बात का ध्यान रखकर, मेरी छोटी से छोटी आवश्यकता पूरी कर के। लेकिन जब मैं अपने मन में उमड़ते हुए भावों को व्यक्त करने लगता हूँ तो तुम मुझे रोक देती हो। मैं तरसता रह जाता हूँ।

सरोज : लेकिन मुझे तो मालूम है कि आप मेरी ही बातें सोचते हैं। मेरे ही ध्यान में लीन रहते हैं।

आसुतोष : सच ?

सरोज : **(लजा कर)** हूँ।

आसुतोष : सरोज, मेरी ज़िन्दगी तुम्हारी ज़िन्दगी में इस तरह समा गई है कि मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता। आज नरेश ने अपने एक दोस्त की बात सुनाई थी जिसने प्रेम में निराश होकर आत्महत्या कर ली। तुम्हें पाने से पहले मैं समझ ही न

सकता था कि उसने ऐसा क्यों किया। लेकिन अब महसूस कर सकता हूँ कि प्रेम में खो कर लोग क्यों अपनी जान गँवा बैठते हैं।

सरोज : (**बहुत संभल कर**) नरेश जी के किसी दोस्त ने आत्महत्या कर ली थी ?

आसुतोष : हाँ। मैं तो तुम्हें सारा किस्सा सुनाने वाला था, लेकिन तुम्हारे दिल पर इतना असर हुआ कि···

सरोज : (**काँपकर**) हाँ, हाँ। मुझ से ऐसी बातें नहीं सुनी जातीं। लेकिन···लेकिन क्या इनके दोस्त ने प्रेम में निराश होकर आत्महत्या की थी ?

आसुतोष : हाँ। बेचारा बहुत ही ब्रीलिएंट लड़का था। लेकिन छोड़ो उस की बात को, तुम वैसे ही उदास रहती हो।

[**टैक्सी रुकने की आवाज**]

सरोज : देखिए बाहर टैक्सी रुकी है। शायद नरेश जी आए हैं।

(**नरेश जल्दी जल्दी अन्दर आता है।**)

नरेश : भई आप मुझे माफ़ कीजिएगा कि इतनी देर हो गई। भाभी आप बस जल्दी तैयार हो जाइयेगा। सिनेमा चलना है।

आसुतोष : सिनेमा ?

नरेश : हाँ, बहुत ही अच्छी अंग्रेजी फ़िल्म है। उसका आखिरी शो है। जल्दी तैयार हो जाइये भाभीजी, मैं टिकिट ले आया हूँ।

सरोज : लेकिन मैं···

आसुतोष : नरेश यह तो नहीं जा सकेंगी। बच्ची की तबियत ठीक नहीं है और आया रात भर की छुट्टी लेकर जा चुकी है।

नरेश : अरे।

सरोज : कोई बात नहीं। यह चले जाएँगे आपके साथ।

आसुतोष : लेकिन तुम···अकेली ?

सरोज : तो क्या हुआ, ऐसे कोई डर की बात नहीं। मैं साथ चली

चलती, अगर कुमकुम की तबिअत खराब न होती। आप ज़रूर जाइये। इतने शौक से टिकिट लाए हैं।

नरेश : ओह; मुझे कुमकुम की बीमारी का ख्याल ही न रहा भाभी। वरना मैं टिकिट हरगिज़ न लाता।

सरोज : ले आए तो क्या हुआ। अभी तो हम आपके यहाँ आएँगे। वहाँ जी भर कर सिनेमा दिखा दीजियेगा।

नरेश : हाँ हाँ। ज़रूर ज़रूर। अच्छा आसुतोष!

आसुतोष : हम एक बजे लौटेंगे।

सरोज : कोई बात नहीं। आप निश्चिन्त होकर जाइये।

नरेश : तो चलो आसुतोष।

आसुतोष : चलो। अच्छा सरोज।

सरोज : जाइये, जाइये। देर न हो जाए।

[दोनों जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

[वही कमरा। आसुतोष और नरेश रात के कपड़े पहने चाय पी रहे हैं।]

नरेश : क्यों, रात वाली तसवीर थी न गज़ब की?

आसुतोष : हाँ, यार, बड़ी दर्दनाक तसवीर थी। दिल पर अभी तक असर बाक़ है।

नरेश : औरत की ट्रैजडी को किस तरह पेश किया है।

आसुतोष : हाँ! और नरेश, तस्वीर ने मुझ पर एक और तरह से असर किया है। तस्वीर देखते हुए मुझे कई बार विनोद की

प्रेमिका याद आई। मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानता। लेकिन क्या विनोद की प्रेमिका भी उसी मानसिक पीड़ा और भावनात्मक द्वन्द्व से न गुजर रही होगी, जिससे फिल्म की हीरोइन गुज़री ? सोचो तो, उस पर क्या गुज़री होगो जब उसकी शादी किसी दूसरे के साथ हुई होगी ? वह किस तरह अपने पति से प्रेम कर सकी होगी ? नरेश, क्या तुम्हें उस लड़की के बारे में कुछ नहीं मालूम ?

नरेश : नहीं। मैंने तो उसे देखा भी नहीं। शायद मैं उससे मिलने की कोशिश करता, लेकिन इम्तहान ख़त्म हो गये और मैं लखनऊ से चला आया। लेकिन चाह ज़रूर है कि ज़िन्दगी में कभी उससे मुलाक़ात हो जाए और उसकी अमानत उसे लौटा दूँ।

आसुतोष : अमानत ?

नरेश : हाँ ! मेरे पास उसके वे पत्र हैं जो उसने विनोद को लिखे थे। विनोद आख़िरी दिनों में मेरे साथ रहने लगा था। बिचारे के ट्रंक में कुंडा भी न था। इसलिए रुपये पैसे और ख़त वग़ैरा मेरे ही ट्रंक में रखता था।

आसुतोष : नरेश, न जाने मैं उस लड़की के बारे में क्यों सैंटीमैंटल हो रहा हूँ। शायद यह फ़िल्म का असर हो। लेकिन तुम उस लड़की का पता तो लगाओ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, क्योंकि सरोज भी लखनऊ ही की है।

नरेश : लेकिन पता लगा कर होगा क्या ? और मुझे तो उसका असली नाम भी मालूम नहीं।

आसुतोष : असली नाम ?

नरेश : हाँ ! विनोद ने उसे 'दीपशिखा' नाम दे रखा था। और वह भी अपने खतों में अपने को दीपशिखा लिखा करती थी।

और अगर उसका असली नाम और पता मालूम हो जाए, तो भी हम क्या कर सकते हैं ?

आसुतोष : नरेश, क्या तुम नहीं समझते कि उसे सहानुभूति के दो शब्दों की कितनी आवश्यकता होगी। क्या हम उसका ग़म हल्का नहीं कर सकते ?

नरेश : ग़म ? आसुतोष, ज़िन्दगी में इतना ग़म है कि तुम उसे बाँट न सकोगे। वह तो एक दीपशिखा है। संसार में न जाने कितनी दीपशिखाएँ जल रही हैं और जल चुकी हैं। वह दीपशिखा जहाँ भी जल कर अपना अन्त कर रही है, उसे अपना अन्त करने दो। छेड़ने से तुम उसे शान्त नहीं करोगे, और भड़का दोगे।

आसुतोष : नहीं, मैं वादा करता हूँ मैं उससे नहीं मिलूँगा। मैं सरोज से कहूँगा, शायद वह उसकी आत्मा का भार हल्का कर सके। औरतों की इस बदनसीबी पर मेरी आत्मा खून के आँसू रोती है।

नरेश : देखो आसुतोष, तुम्हें भाभी जी से इसका जिक्र करना नहीं चाहिए। देखा नहीं था, आत्महत्या की बात सुनते ही उनके दिल पर कैसी ठेस लगी थी ? अगर मैं कभी लखनऊ गया तो खुद पता लगाने की कोशिश करूँगा।

आसुतोष : मगर वह रहती कहाँ थी ?

नरेश : हज़रत गंज में।

आसुतोष : **(दिलचस्पी से)** हज़रत गंज में। और उसके पिता का नाम क्या था ?

नरेश : यह मुझे मालूम नहीं। बस इतना याद पड़ता है कि विनोद उन्हें लखनऊ का सबसे बड़ा व्यापारी बताता था—शायद काग़ज का।

आसुतोष : **(जिसे बिजली का झटका लगा हो)** नरेश, क्या कहते हो ?

[**नरेश उसकी तरफ़ नहीं देखता। सिगरेट के धुएँ में खोया-खोया सा शून्य को ताकता रहता है।**]

नरेश : हाँ हाँ, कागज़ का व्यापारी। हज़रत गंज ही में उनकी दुकान थी—काफ़ी हाउस के बराबर।

आसुतोष : (**सूखे गले से**) सरोज !

नरेश : (**चौंक कर**) भाभी ? कहाँ ? (**ठीक इसी समय सरोज दरवाज़े में नज़र आती है**) आइये, आइये भाभी जी।

सरोज : आपने चाय पी ? (**आसुतोष को देख कर**) अरे आपको क्या हुआ है ?

आसुतोष : (**नज़रें बचाते हुए सूखे गले से**) कुछ नहीं, कुछ नहीं।

सरोज : (**चिन्ता के स्वर में**) फिर कैसे हो रहे हैं ? क्या सिर में दर्द है ?

नरेश । तुम अभी तो ठीक थे। एक साथ क्या हो गया ? चेहरा सफ़ेद हो रहा है तुम्हारा तो।

आसुतोष : कुछ नहीं ? मेरे सिर में दर्द है। मैं अन्दर जाकर सो रहा हूँ।

सरोज : चलिए, बिस्तर बिछा दूँ।

आसुतोष : नहीं। मैं खुद बिछा लूंगा। तुम यहीं ठहरो, नरेश के पास।

नरेश : तुम्हें क्या हो गया है बैठे-बैठे ?

आसुतोष : (**उखड़े-उखड़े लहज़े में**) बस, मैं आराम करना चाहता हूँ।

नरेश : (**उसके मानसिक द्वन्द्व को न समझते हुए**) अबे बदले नहीं तुम। रहे वैसे-के-वैसे बेहूदा और बेपेंदा।

आसुतोष : (**ज़ोर से**) हाँ, मैं वैसे-का-वैसा बेहूदा, बेपेंदा ही नहीं, बेवकूफ और अन्धा भी हूँ।

सरोज : अरे ! यह आपने इन्हें क्या कह दिया ? यह तो मज़ाक कर रहे थे।

आसुतोष : (**कटुता से**) और मज़ाक करने और बेवकूफ़ बनाने के लिए दुनिया में बस मैं ही रह गया हूँ ?

नरेश : (लज्जित होकर) मैं तुमसे अपने कहे की माफी माँगता हूँ। मेरा उद्देश्य तुम्हें अपमानित करना न था। लेकिन अगर तुम्हें बुरा लगा तो मुझे माफ़ कर दो।

[आसुतोष चुप रह जाता है।]

नरेश : तुम्हें शायद मेरा यहाँ आना या रहना पसंद नहीं आया ? आसुतोष मैं आज ही चला जाता हूँ।

आसुतोष : (सहसा पलट कर नरेश से लिपट जाता है) नहीं, नहीं, नरेश। मुझे माफ़ कर दो। मुझे तुमसे कोई गिला नहीं। तुम मुझे माफ़ कर दो, क्योंकि मैं होश में नहीं हूँ। मैं पागल हो गया हूँ।

[मुँह छिपा कर सिसकता हुआ अन्दर चला जाता है। सरोज और नरेश पीछे-पीछे जाते हैं।]

चौथा दृश्य

[वही कमरा। कलैण्डर ३० तारीख दिखाता है जिससे पता चलता है कि एक हफ्ता गुज़र गया। आसुतोष हाथ में एक पैकिट लिए हुए बौखलाया सा कमरे में आता है। चारों तरफ़ देखता है और यह निश्चय करके कि कमरे में कोई नहीं है, कमरे के दरवाज़े बन्द कर देता है। फिर बत्ती जला कर और जल्दी में कोट को उतार कर एक ओर फेंक कर, काँपते हाथों से पैकिट खोलता है। जैसे ही वह ऊपर का काग़ज़ खोलता है, बहुत से ख़त मेज़ पर बिखर जाते हैं। बौखला कर वह ख़तों को समेटता है और फिर एक ख़त लिफ़ाफ़े से निकाल कर देखता है। ख़त को देखते ही वह ऐसे चौंक पड़ता है जैसे साँप ने डस लिया।]

आसुतोष : ओह ! तो तुम ही हो । जो सोचा था, सही निकला । विनोद की प्रेमिका दीपशिखा, तुम ही हो···तुम···सरोज ! हाँ नरेश के भेजे हुए ये ख़त तुम्हारे ही हाथ के लिखे हैं—ख़त जो तुमने विनोद को लिखे । ओह, मैं इनके एक-एक अक्षर को पहचानता हूँ, क्योंकि ऐसे ही अक्षर तुमने मुझे भी लिखे हैं, और मैंने इन अक्षरों को लाख-लाख बार पढ़ा है, पूजा है, आँखों से लगाया है—यह समझकर कि ये मोती तुमने अपनी आत्मा की गहराइयों से पहली बार मेरे लिए, सिर्फ मेरे लिए निकाले हैं । लेकिन नहीं···ये पवित्र मोती नहीं थे । ये उतरे हुए मोती थे, जो तुमने विनोद की लाश से उठाकर, मुझ पर चढ़ाए । ओह ···जिसे मैं आरती का दीप समझा था, वह समाधि का दिया निकला । मैं चार साल से अपने घर में समाधि का दिया जलाये हुए हूँ ? तुमने ठीक ही लिखा है (**ख़त पढ़ता है । अगर सरोज की आवाज़ में पढ़वाया जाए तो बहुत प्रभावी होगा**) "विनोद अगर तुम मुझे न मिले तो ये होंठ हँसना छोड़ देंगे । ये पलकें लजाना छोड़ देंगी । मेरी छाती में मेरा नन्हा सा दिल, किसी की आहट पर दिये की नन्हीं सी लौ की तरह धड़कना बन्द कर देगा ।" (**ख़त से नज़रें उठा कर**)······ओह, तो यह है तुम्हारी उदासी का कारण । सरोज, यह है वह उदासी का बासी फूल, जो नरेश ने तुम्हारी आँखों में पड़ा देखा । सरोज, अब मालूम हुआ कि जिस गर्मी और जिस तड़प को मैं तुम में और तुम्हारे पत्रों में ढूँढ़ता था, वह तुम किसी और पर लुटा चुकी हो । (**फिर ख़त पढ़ता है**) "विनोद अभी-अभी गजर ने दो बजाए हैं । सब सो गये हैं । चाँदनी भी पेड़ों की बाहों पर सर रख कर सो गई है । सिर्फ़ मैं जाग रही हूँ । तुम कहाँ हो ? कल तीन दिनों के बाद तुम्हें देखा···तुम

उसी जगह, मेरी खिड़की के सामने, बिजली के खम्भे के नीचे खड़े थे। हाय, इन तीन दिनों में तुम्हारी क्या हालत हो गई? मेरे चाँद को कैसा गहन लग गया है।" (**खत छोड़ कर**) हाँ सरोज, गहन लग गया। सब चीज़ों को—चाँद को, सूरज को, आसमान के सितारों को, ज़मीन के कणों को। और मेरा जीवन इस विकराल गहन के मनहूस साए में आ गया है। (**थके लहजे में**) मैं गहना गया हूँ।

[**मेज़ पर सिर रख कर सिसकियाँ लेने लगता है।**]

पाँचवाँ दृश्य

[**वही कमरा। सरोज मेज़ पर किताबों को ठीक करके गुलदान के फूल सँवारती है। आसुतोष कमरे में दाखिल होता है। उसके चेहरे पर वहशत सी है। वैसे वह नार्मल दिखाई पड़ता है। लेकिन उसके व्यवहार में एक कृत्रिमता है जो उसकी असामान्य मनोस्थिति का पता देती है। उसकी बग़ल में बहुत से डिब्बे दबे हुए हैं।**]

सरोज : (**खुश होकर**) आप आ गए।

आसुतोष : (**कुछ-कुछ नाटकीय स्वर में**) हाँ, और देखो मैं तुम्हारे लिए क्या-क्या लाया हूँ।

सरोज : क्या है?

आसुतोष : साड़ियाँ?

सरोज : लेकिन अभी तो आप दो साड़ियाँ लाए थे।

आसुतोष : तो क्या हुआ, दो और सही। (**डिब्बा खोलता है।**)

सरोज : (**चौंक कर**) लेकिन ये भी बड़े शोख रंग की हैं?

आसुतोष : तो क्या हुआ ?

सरोज : मैंने आपसे कहा था न, मुझे शोख़ रंग अच्छे नहीं लगते ।

आसुतोष : क्यों नहीं लगते ?

सरोज : (**उदासी से**) मेरे रंग पर नहीं खिलते ।

आसुतोष : क्या खूब । अगर तुम्हारे इस गोरे रंग पर शोख़ रंग नहीं खिलते तो किस रंग पर खिलेंगे ? अब मैं तुम्हें ये हल्के रंग की सादी साड़ियाँ पहनने को नहीं दूँगा । (**दूसरा डिब्बा खोल कर**) और यह रहा तुम्हारे मेक-अप का सामान ।

सरोज : (**चौंक कर**) यह आपने क्या किया ? आप तो जानते हैं मैं पाउडर तक नहीं लगाती ।

आसुतोष : इसी लिए तो लाया हूँ (**स्वर में अचेतन रूप से कठोरता और निर्ममता आ जाती है**) अब तुम शोख़ रंग के कपड़े पहनोगी और मेक-अप करोगी । अब मैं तुम्हें उदास और मुरझाई हुई न रहने दूँगा ? तुम्हें हँसना होगा, खिलखिलाना होगा, स्मार्ट बनना होगा ।

सरोज : इन दिनों सचमुच आपको कुछ हो गया है । हम तो अपने सादा से जीवन में खुश थे । आप स्वयं कहा करते थे कि जीवन में बरसाती नदी का सा उन्माद छिछोरपन की निशानी है । और अब हमारे सामने बच्ची है । हमें तो ये बातें शोभा नहीं देतीं ।

आसुतोष : वाह, यह बच्ची की बात एक ही कही । क्या जिनके एक बच्ची हो जाती है वे कपड़े पहनना और ठाठ से रहना छोड़ देते हैं ? तुम बिना बात बुढ़िया बन गई हो । हर वक्त बुढ़ियों की तरह सिर ढापे और नजरें झुकाए रहती हो (**बड़े नाटकीय ढंग से**) अरे ज़रा सिर को हवा लगने दो । इन लम्बे-लम्बे बालों में गुलाब के सुर्ख़ फूलों को मुस्कराने दो ।

पलकें उठाओ और ज़िन्दगी की आँखों में आँखें डाल कर देखो।

सरोज : आप आज क्या-क्या कह रहे हैं? आप तो ऐसे मज़ाक नहीं करते।

आसुतोष : मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा। मैं पूरी गम्भीरता से कह रहा हूँ। अब से तुम्हें इसी तरह रहना होगा।

सरोज : नहीं, नहीं···मुझ से ऐसे नहीं रहा जाएगा। मैं ये सब कुछ न कर सकूँगी।

आसुतोष : **(तेज़ी से)** क्यों? वजह?

सरोज : वजह? **(स्वर मंद हो जाता है। उदासी छा जाती है।)** बस, मुझे अच्छा नहीं लगता।

आसुतोष : क्या अच्छा नहीं लगता? मैं? यह घर? यह ज़िन्दगी?···

सरोज : **(तड़प कर)** आप—आप क्या कह रहे हैं?

आसुतोष : तो फिर तुम ये सब कुछ क्यों न करोगी? तुम्हें करना होगा।

सरोज : मुझ से यह सब कुछ न हो सकेगा। **(रो पड़ती है)**

आसुतोष : **(बेरहमी से)** इसलिए कि तुम शोक मना रही हो?

सरोज : **(तड़प कर)** क्या? यह आपने क्या कहा?

आसुतोष : लेकिन तुम डर क्यों गईं? मैंने तो सिर्फ अपने को गाली दी है। कुछ और नहीं कहा है। अभी मैं ज़िन्दा हूँ। तुम्हारे शोख़ रंग पहनने पर कोई एतराज़ नहीं करेगा। हाँ, अगर मेरे होते हुए भी तुम अपने को···

सरोज : **(तड़प उठती है और आसुतोष के मुँह पर हाथ रख देती है)** बस बस, भगवान के लिए आगे एक शब्द न कहिये। मुझे इत्ती बड़ी सज़ा न दीजिए। आप जो कुछ कहेंगे, मैं करूँगी। **(रोती हुई अन्दर भाग जाती है। आसुतोष एक क्षण तो उसी दशा में बैठा रहता है, फिर उसके चेहरे पर**

गहरी वेदना और मानसिक संघर्ष के भाव उभर आते हैं। वह कोट उतार देता है। टाई खींच कर फेंक देता है। कमरे में बेचैनी से घूमता है और अन्त में सोफ़े पर गिर कर और मेज़ पर बाहें रख कर अपना सिर उनमें छिपा लेता है। परन्तु वह इस तरह भी शान्ति नहीं पाता और तड़प उठता है।)

आसुतोष : यह सब कुछ क्या है ? यह क्या हो रहा है ? मैं क्या कर रहा हूँ ? मुझे क्यों लगता है जैसे कोई असली सूरज उठा कर ले गया है और दुनिया में एक बड़ा, पीला, नकली सूरज चमक रहा है। धूप का रंग बदल गया है। यह मकान, यह फरनीचर, यह तसवीरें, गहनाई हुई क्यों मालूम देती हैं? सरोज यह सब कुछ क्या है···ये चार साल जो तुमने मेरे साथ बिताए हैं ? यह सेवा जो तुमने मेरी की है ? यह घर जो तुमने सजाया है ? यह बच्ची जो तुमने मुझे दी है ? ये सब कुछ क्या है ! क्यों मुझे लगता है यह आसमान, यह ज़मीन, यह चाँद, ये सितारे, सब मोम के बने थे। और अब मोम पिघल रहा है और मैं मोम के इन पिघलते हुए तूदों को पकड़ता फिर रहा हूँ।···सरोज तुम क्या हो ? तुम्हारी आत्मा में कितनी गहराई है ? क्या इसकी कोई थाह नहीं ? इसका कोई पता नहीं ? तुम्हारा विनोद मर गया। उसने तुम्हारे लिए जान दे दी। और तुमने मेरे साथ, एक पराए आदमी के साथ घर बसा लिया ? तुमने यह सब कुछ कैसे किया ? एक आदमी पर अपना सारा प्यार लुटा कर दूसरे आदमी को भी वैसा ही प्यार कैसे दिया ? यह कैसे है कि मेरे घर लौटने में ज़रा देर हो जाने पर तुम मेरा भी बेकली से इन्तज़ार करती नज़र आती हो। आज भी जब मैं तुम्हें एक तितली की तरह नचा रहा हूँ, तुम्हारे घावों पर नमक

छिड़क रहा हूँ, तुम्हारी शोक मनाती हुई आत्मा को सुहाग के सुर्ख़ जोड़े में लपेट कर क्लबों में घसीटता फिर रहा हूँ, तो कैसे आँख खुलने पर तुम चाय लिए मेरे सिरहाने खड़ी होती हो ? गुसलख़ाने में मेरा तौलिया और मेरे कपड़े कैसे बदस्तूर टँगे मिलते हैं ? दफ़्तर से लौटने पर मुझे अपने चप्पल और कपड़े इस तरह रखे कैसे मिलते हैं, जैसे वे इसी बाट में हों कि मैं दफ़्तर से लौटूँ और उन्हें पहन लूँ। यह क्या है सरोज ? क्या धोखा, धोखा नहीं होता ? सत्य, सत्य नहीं होता ? तुम क्या हो सरोज ? विनोद की याद को तुमने कहाँ छिपाया है ।

[गहरी वेदना में सिर झटक कर फिर अपनी बाहों के बीच मेज पर रख देता है । बत्तियाँ बुझ जाती हैं ।]

छठा दृश्य

[वही कमरा । आसुतोष सोफ़े पर बैठा है, रात के कपड़ों में। दाढ़ी उसकी बढ़ी हुई है । चेहरे का रंग काला पड़ गया है । आँखों के नीचे कालिमा छा गई है। वह धुआँधार सिगरेट पी रहा है। सिगरेट पूरी तरह खत्म नहीं हो पाती कि वह उसे बड़ी निर्दयता से ऐश-ट्रे में रगड़ कर तोड़ डालता है । सोफ़े की पुश्त पर सिर रख कर विकलता से अपना सिर झटकता है । फिर झटक कर सोफ़े से उठ खड़ा होता है, इधर-उधर चलता है । फिर मेज़ से सिगरेट उठा कर सुलगाता है और बैठ कर गहरे-गहरे कश लगाता है । सरोज कमरे में आती है । कुछ देर तक आसुतोष की हालत देखती है और फिर उसके सामने फ़र्श पर बैठ

जाती है। आसुतोष उसकी तरफ़ नहीं देखता। वह छत की ओर देखते हुए सिगरेट पिए जाता है। सरोज, उसके घुटने पर अपना हाथ रख कर…]

सरोज : आखिर बताइये तो हुआ क्या है ? न दिन को चैन, न रात को नींद। न खाने की सुध, न पहनने का ख्याल। हँसना बोलना तक छोड़ दिया। इस तरह तो आपका स्वास्थ्य और गिर जाएगा।

आसुतोष : (**क्रूरता से**) गिर जाने दो।

सरोज : देखिये, मेरा ख्याल नहीं तो अपनी कुमकुम का ख्याल कीजिए। मुझे डाक्टर को बुलाने दीजिए।

आसुतोष : नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ।

सरोज : हुआ कैसे नहीं है। जरा आइने में देखिए। सोना सा रंग काला पड़ गया है।

आसुतोष : (**क्रूरता से**) सोना नक़ली था।

सरोज : यह आप कैसी बातें करते हैं ? मुझे किस बात की सजा देते हैं ? क्या मुझ से कोई भूल हुई है ?

आसुतोष : (**कठोरता से**) भूल। तुम से नहीं, मुझ से हुई है। मैं पागल हूँ। अहमक हूँ। अन्धा हूँ।

सरोज : जरूर मुझ से कोई भूल हुई है। मुझे बता दीजिए। बता दीजिए, वह क्या बात है ?

आसुतोष : (**बड़ी सख़्ती से सरोज की ओर देखते हुए**) वह बात वह है, जिसे सुनते ही भूचाल आ जाएगा, ज्वालामुखी फट पड़ेंगे और उनका सुर्ख़ सुर्ख़ दहकता हुआ लावा तुम्हें, मुझे, कुम-कुम को……

सरोज : (**काँप कर**) नहीं, नहीं…भगवान के लिए आगे कुछ न कहिए। अपनी बच्ची के लिए कुछ न कहिए।

आसुतोष : (**तड़प कर**) ओह, मेरे दिमाग़ में जहर छलक रहा है। मेरी

रगों में विषैले साँप फुंकारते फिर रहे हैं। उफ़...आह...

सरोज : आप आराम कीजिए। मैं सिर दबाती हूँ। आप सो जाइये।

आसुतोष : अब मैं नहीं सो सकता। अब मैं कभी न सो सकूँगा। जिसने किसी की अर्थी से उतार कर चादर ओढ़ ली हो, जिसने मुर्दे के कपड़े पहन रखे हों, जो श्मशान घाट...

सरोज : **(चीख़ को दबा कर)** बस कीजिए। भगवान के लिए ऐसी भयानक बातें न कीजिए। मैं आपके पाँव पड़ती हूँ।

आसुतोष : **(अलग हटकर)** मेरे पाँव न पकड़ो। मुझे न छुओ, न छुओ, वरना मैं घर से निकल जाऊँगा...कहीं चला जाऊँगा।

सरोज : पर यह तो बताओ यह किसकी सज़ा है। चार साल से तुम ने मुझे किस प्यार से रखा है। मेरी हर चाह को पूरा किया है। और मुझे सुख और दुख में अपना शरीक रखा है। फिर अब क्या हो गया? **(रो पड़ती है)** आप तो कहा करते थे...

आसुतोष : **(चीख कर)** वह सब झूठ था, छल था, धोखा था...

सरोज : नहीं, वह धोखा नहीं था। आप किसी को धोखा नहीं दे सकते।

आसुतोष : **(बड़ी बे-रहमी से)** जिस तरह कि तुम नहीं दे सकतीं? **(भड़क कर)** धोखेबाज़, मक्कार कपटी औरत, मेरी नज़रों से दूर हो जाओ। ओह, ओह!

सरोज : **(तड़पकर)** आसुतोष। **(एक दो क्षण ठहर कर और चोट को सहने के बाद)** तुम मुझे मार डालो। मेरा गला घोंट डालो, अगर इन सालों में एक दिन भी मैंने छल किया हो। मैं कैसे अपना कलेजा चीर कर दिखाऊँ कि वहाँ छल नहीं है, कपट नहीं है, धोखा नहीं है। मैंने तुमको वैसे ही निष्कपट भाव से पूजा है, जैसे पुजारी भगवान को पूजता है। मैंने कभी तुम्हारी मूर्ति का अपमान नहीं किया।

आसुतोष : **(बेरहमी और नफ़रत से जलते हुए लहजे में)** दीप-शिखा।

सरोज : (चीख मार कर बेहोश होते हुए) आसुतोष ।

आसुतोष : बेहोश हो गई ? हा···हा···हा·· हा···हा···

[पागलों की तरह क़हक़हा लगाता अन्दर चला जाता है । सरोज फर्श पर पड़ी रहती है । बत्तियाँ बुझ जाती हैं ।]

सातवाँ दृश्य

[वही कमरा, परन्तु रात का समय है । घड़ी चार बजाती है । कमरे में मेज़ पर टेबल लैम्प जल रहा है । टेबल लैम्प के पास ऐश-ट्रे में एक अधजली सिगरेट के धुएँ की पतली सी लकीर उठकर कमरे के अन्धकार में विलीन हो रही है । फर्श पर और मेज़ पर सिगरेट के टुकड़ों का ढेर है । आसुतोष अपने हाथ मेज़ पर रखे और उन पर अपनी ठोड़ी टिकाए बड़े एकाग्र भाव से धुएँ की उस पतली, मिटती, लकीर को देख रहा है। सरोज अन्दर से कमरे में आती है और धीरे-धीरे दीवार, और चीज़ों का सहारा लेती हुई आगे बढ़ती है और फिर एक साथ बिना कुछ कहे सुने आसुतोष के पैरों में आ गिरती है । आसुतोष बड़ी निर्दयता से सोफ़े से उठकर अलग जा खड़ा होता है । सरोज बड़े कातर नेत्रों से देखती रह जाती है ।]

आसुतोष : (बड़ी कठोरता से) उठकर क्यों चली आईं ? तुमको तो डाक्टर पूरे आराम के लिए कह गया है ।

सरोज : (उठते हुए) मैं तो पूरा आराम कर लूँगी । लेकिन आप क्यों रात भर जागते रहे हैं ? भगवान के लिए कुछ देर को तो सो जाइये । मुझे जो सज़ा देनी है, सुबह उठकर दे लीजिएगा ।

आसुतोष : **(व्यंग से)** सज़ा ? किस बात की सज़ा ? तुमने कोई छल नहीं किया। कपट नहीं किया। धोखा नहीं किया। मेरी मूर्ति......

सरोज : **(बड़े विश्वास से)** हाँ आसुतोष। इसमें तनिक झूठ नहीं है।

आसुतोष : ओह। बेहोश होने का इतना फ़ायदा हो गया ? तुम्हारी तबियत काफ़ी सँभल गई मालूम होती है।

सरोज : मैं इस समय कुछ नहीं कहूँगी। बस आप इस समय थोड़ा आराम कर लें। सुबह मैं आपका बड़े से बड़ा इलज़ाम...

आसुतोष : **(भड़क कर)** इलज़ाम ? मैं इलज़ाम लगा रहा हूँ ? झूठ बोलता हूँ ? दग़ाबाज़ औरत **(किताबों की अलमारी में से उसके पत्र निकाल कर)** इन पत्रों को देख जो तूने अपने प्रेमी को लिखे **(पत्रों को उसके मुँह पर मारता है।)**

सरोज : **(बिना विचलित हुए)** आसुतोष ! वह मर चुका है और उसके साथ-साथ सब कुछ मर चुका है।

आसुतोष : लेकिन उसकी चिता तेरी आँखों में बुझी पड़ी है। उसकी हड्डियाँ तेरी छाती में रखी हैं। तू उसकी समाधि पर दिया बन कर जी रही है।

सरोज : **(बड़ी भावना से)** क्या तुमने सचमुच ऐसा महसूस किया है आसुतोष ? इन चार सालों में......

आसुतोष : बस-बस। मुझे इन चार सालों ही की याद न दिलाओ। ये चार साल ही तो मुझे पागल बनाए दे रहे हैं। एक औरत चार साल तक एक मुर्दे को लिए, मेरे सीने से लगती रही, मुझ से प्यार जताती रही, मेरे बच्चे को पालती रही। और मुझे उसकी आँखों में प्रेम, उसके चेहरे पर पवित्रता, उसके स्पर्श में अपनापन ही महसूस होता रहा !

सरोज : आज नज़र नहीं आता ?

आसुतोष : ओह, इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि तुम नारी नहीं हो। तुम

छल और कपट की जीती जागती मूर्ति हो। तुम आज भी मुझे धोखा दे सकती हो। आज भी मैं जब तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारी आवाज़ सुनता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ, तो तुम मुझे वैसी ही पवित्र, भोली और सच्ची मालूम पड़ती हो।

सरोज : (**एक गहरे आत्मविश्वास के साथ**) आसुतोष, अगर तुमने ऐसा महसूस किया है तो मुझे विश्वास है, तुम मेरी आत्मा की बीती समझ सकोगे। यह सच है मुझे विनोद से अगाध प्रेम था। मुझे लगता था उसके बिना मैं जी न सकूंगी। जिस दिन मैंने सुना विनोद ने अपनी जान दे दी, मुझे लगा मैं मर गई हूँ। तीन दिन तक मैं मुर्दे की तरह सुन्न पड़ी रही। मैंने अपने हाथों से अपना गला घोंटना चाहा। भूखी रही। मौत की कल्पना में डूबी रही। लेकिन चौथे दिन भी मैंने पाया, मैं मरी नहीं हूँ। न जाने कहाँ, मेरे अन्दर एक सोता सा बहता है, जो मुझे जिलाए हुए है। मेरे लाख चाहने पर भी वह सोता बन्द न हुआ। वह मेरी रगों में सरसराता रहा, आगे बहता और बढ़ता रहा। उसका स्वर घटने के बजाए बढ़ता रहा, ऊँचा होता रहा, यहाँ तक कि मेरे कानों ही में नहीं, मेरे सारे शरीर में गूँजने लगा। और न जाने कैसे मैं चलने-फिरने लगी। खाने-पीने भी लगी। छुई मुई की तरह मुरझाई हुई मेरी पलकें खुलने लगीं। और मुझे लगा जैसे दुनिया में फिर से धूप फैलती जा रही है। मैं जीवन से हार गई।

आसुतोष : नहीं, नहीं, यूँ कहो कि तुमने अपनी जान बचा ली। तुमने विनोद के साथ भी छल किया।

सरोज : तुम उसे छल कह सकते हो, पर हमने तो साथ-साथ जीना चाहा था, मरना हम में से कोई न चाहता था। मैंने जीकर विनोद के साथ कोई छल नहीं किया।

आसुतोष : और मेरे साथ ?

सरोज : यही मैं बताना चाहती हूँ, आसुतोष । जिस घड़ी तक मेरे तुमसे फेरे नहीं फिरे थे, मैं यही सोचती थी कि तुम्हें प्यार न कर सकूँगी । लेकिन जिस घड़ी पंडित ने मेरा आँचल तुम से बाँधा, और हम वेदी के गिर्द फेरे लेने लगे, मेरे अंदर एक अद्भुत सा परिवर्तन आने लगा—जैसे कोई चीज़ जा रही हो, कोई चीज़ आ रही हो । मेरे मन में एक नया सा चित्र बनने लगा । और जब तुमने मेरा घूँघट हटा कर मेरी आँखों में झाँका तो एक क्षण के लिए तिलमिला कर विनोद का चेहरा मेरी आँखों के आगे आया, लेकिन दूसरे क्षण वह ज़ोर से तारे की तरह टूटा और न जाने कहाँ चला गया ।

आसुतोष : (**विद्रोह पूर्वक**) यह सब झूठ है, बहलावा है । प्यार यूँ नहीं मर जाता ।

सरोज : यह ठीक है । यह सब कुछ अपने आप नहीं हुआ । मुझे अपने को समझाना भी पड़ा था, पाप के विचार से डरना भी पड़ा था । मैंने अपने मन को समझाया—इनका क्या दोष है ? इन्होंने विनोद को मुझ से नहीं छीना । इन्होंने तो उलटा अनजाने में मुझे विनोद की तरह अपनी आत्मा से चाहा है । फिर इन्हें किस बात की सज़ा दूँ । इन पर कैसा गुस्सा करूँ ? पाप के साथ-साथ अन्याय भी करूँगी ?······और जैसे मेरी आत्मा के पट खुल गए । मैंने तुम्हें वहाँ जगह दे दी ।

आसुतोष : (**जैसे तर्क को अस्वीकार करते हुए**) यह नामुमकिन है। एक औरत जब एक बार प्यार कर लेती है तो दुबारा किसी और को प्यार नहीं कर सकती । तुमने मुझे कभी नहीं चाहा ।

सरोज : क्योंकि लोगों के साथ तुम भी नारी के प्रेम को एक शीशा समझते हो जो टूट कर नहीं जुड़ता ? आसुतोष, पहिले मैं भी यही मानती थी । मैंने ऐसा सुना था, पढ़ा था और ऐसा

करना भी चाहा था। लेकिन यह झूठ निकला। नारी भी इन्सान होती है। उसमें भी जीवन होता है, और जीवन मरी हुई चीज़ों के सहारे नहीं, जीवित चीज़ों के सहारे जीता है। उसकी सूखी टहनी कुछ दिनों बाद फिर हरी होने लगती है। माँ का एक बच्चा मरता है तो वह दूसरे बच्चे की बात भी नहीं सोच सकती। लेकिन जब दूसरा बच्चा आ जाता है, तो वह उसे भी वैसे ही प्यार से चाहने लगती है।

आसुतोष : यह बिल्कुल दूसरी बात है।

सरोज : बात दूसरी हो पर सिद्धान्त वही है। आसुतोष, आदमी की प्रकृति नहीं बदल जाती।

आसुतोष : अगर यह बात है तो बताओ तुम्हारी आँखों में इतनी जल्दी आँसू क्यों आ जाते हैं ? जब मैं प्यार करता हूँ तो तुम उदास क्यों हो जाती हो ? मैं तुम्हारा क़हक़हा सुनना चाहता हूँ तो तुम मुस्करा कर क्यों रह जाती हो ? मैंने तुम्हें शोख़ रंग के भड़कीले कपड़े लाकर दिए, तुमने पहनने से क्यों इन्कार किया ? क्या तुम विनोद के मरने का शोक नहीं मना रही हो ?

सरोज : आसुतोष, मेरे आगे तुम हो, मेरी बच्ची है, और औरत के आगे जब ये दो चीज़ें होती हैं तो वह शोक मनाना छोड़ देती है। वह आस मनाने लगती है। हाँ, यह ठीक है कि पहिले जैसी उमंग मेरे दिल में नहीं उठती। एक थकान सी रहती है। ऐसा लगता है जैसे बहुत सा ख़ून निकल गया हो और शरीर में रक्त की बस एक पतली सी धार पड़ी रह गई है।······जो इन्सान मौत की खाई में झाँक कर निकल आए, वह लाख चाहे, खिलखिला कर नहीं हँस सकता। पर वह प्रेम फिर भी कर सकता है। सुख फिर भी दे सकता है। यह ठीक है उसके प्यार में सूरज की सी गर्मी नहीं रहती, पर चन्द्रमा

की सी शीतलता तो रहती है।

आसुतोष : **(उलझ कर)** यह ठीक हो सकता है। सच हो सकता है। पर यह मैं कैसे भूल जाऊँ कि तुम किसी और से प्यार कर चुकी हो। अपनी भावनाओं के पहिले फूल किसी और पर चढ़ा चुकी हो। जीवन के सुन्दरतम सपने तुमने जिस चेहरे के गिर्द बुने थे, वह मेरा चेहरा नहीं था। वह किसी और का था।

सरोज : पर वह अब सब कुछ मर चुका है। अब कोंपलें फिर से फूटी हैं।

आसुतोष : **(बड़ी विकलता से इधर-उधर घूम कर)** लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता। अब मैं तुम्हारे साथ खुश नहीं रह सकता। मेरा दिमाग़ समझ सकता है, पर मन नहीं मान सकता।

सरोज : आसुतोष। कभी मैंने भी यही अनुभव किया था। मुझे भी लगा था, मैं अपने मन को न समझा सकूँगी। पर यह ग़लत है। यह जीवन का सत्य नहीं है, संस्कारों का हठीलापन है। मेरे संस्कारों ने भी यही कहा था, तू अपने पति को न चाह सकेगी। एक बार प्रेम करके, दुबारा न कर सकेगी। ऐसा सोचना अच्छा लगता है। इस विचार में वैसा ही हल्का-हल्का घातक नशा है, जैसा मौत की कल्पना में होता है। मौत की कल्पना सुन्दर होती है। उसके सामने जीवन की चाह कभी-कभी क्रूर लगती है, कुरूप भी लगती है, पर होती वह एक स्वस्थ चाह है। संस्कार तो आज भी यही कहते हैं कि मुझे विनोद के साथ सती हो जाना चाहिए था, मर जाना चाहिए था। पर क्या तुम भी मुझ से यही कहोगे? क्या तुम भी मेरा सती हो जाना चाहोगे?

आसुतोष : **(जैसे एक भँवर में फँस गया हो)** मैं नहीं जानता, मैं क्या कहना चाहता हूँ, क्या करना चाहता हूँ। मेरे मस्तिष्क में

कुहरा सा भर गया है ।

सरोज : यह संस्कारों का कुहरा है आसुतोष । उन संस्कारों का, जो मरे हुए विचारों के भूत होते हैं । तुम इन भूतों के बहकावे में न आओ । ये भूत ज़िन्दगी के दोस्त, नहीं दुश्मन होते हैं ।

आसुतोष : (**एक भावनात्मक विवशता को प्रकट करते हुए**) लेकिन मैं इनका मुक़ाबला नहीं कर सकता । ये जंगलों में लगी आग से उठते हुए भूरे, कड़वे, कसीले धूएँ के बादलों की तरह पेच-दर-पेच उमड़ते चले आ रहे हैं, मेरे दिमाग पर छाते चले जा रहे हैं ।

सरोज : लेकिन यह बहुत देर तक न छाये रहेंगे आसुतोष, क्योंकि कोहरे की तरह ये भी उसी समय तक छाए रहेंगे जब तक भावनाओं की इस भयावनी रात से विचार का सूरज नहीं निकलता—चिन्तन का प्रकाश नहीं फैलता । लेकिन समय के साथ जैसे-जैसे तुम्हारे मस्तिष्क में विचार का सूरज चढ़ेगा, तुम इस सत्य के दर्शन करोगे कि जीवन सब से महान होता है प्रेम से भी महान होता है । तब तुम्हारे दिमाग से संस्कारों के यह भूत भाग जाएँगे और तुम देखोगे, कि मैंने किसी के साथ छल नहीं किया । किसी को धोखा नहीं दिया । मैंने सिर्फ़ उस शक्ति के आगे सिर झुकाया है, जिसे जीवन कहते हैं ।

[**और सहसा जैसे आसुतोष के अन्तर में प्रकाश हो जाता है । वह उठ खड़ा होता है—विस्मित, वशीभूत । वह हैरत से सरोज की ओर देखता है—धीरे-धीरे पग उठाता हुआ उसकी ओर बढ़ता है और फिर एक साथ उसे अपनी छाती से लगा कर अपना सिर उसके कन्धे पर रख देता है । सरोज जो भावनाओं के स्तर से ऊपर उठ गई थी, सहसा भावना की अग्नि में पिघल जाती है और फूट-फूट कर रोने लगती है । आसुतोष कुछ समय तक कुछ नहीं कहता । फिर**

उसे छाती से अलग करता है। उसके पल्लू से आँसू पोंछता है और फिर उसकी कमर में हाथ डाल कर उसे खिड़की की ओर ले जाता है। मंच की बत्तियाँ बुझ जाती हैं और खिड़की के पीछे से प्रभात की प्रथम रश्मियाँ खिड़की के शीशों को आलोकित कर देती हैं। दोनों उस प्रकाश को देखते हैं, जो अभी-अभी अन्धकार के गर्भ से उदय हुआ है।]
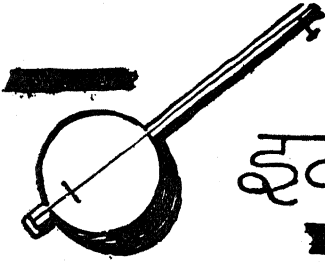
इकतारा

पात्र

प्रबोध	:	एक अन्तर्मुखी साहित्यिक युवक
निर्मल	:	प्रतिभाशाली शिक्षित लड़की
राधा	:	प्रबोध की अनपढ़ भावशून्य पत्नी
विमला	:	कस्बे की सरल स्वभाव लड़की
रायसाहब	:	विमला के पिता

[**नेपथ्य में समुद्र की लहरों का कोलाहल**]

प्रबोध : ओह किस क़दर खुला-खुला लगता है यहाँ। तुम्हें अच्छा नहीं लगता समुद्र का किनारा ?

निर्मल : मुझे ? नहीं।

प्रबोध : ताज्जुब है। मुझे तो समुद्र का किनारा इस क़दर अच्छा, इस क़दर प्यारा लगता है कि बयान नहीं कर सकता।

निर्मल : तुम ख़ुद समुद्र के किनारे जैसे जो हो !

प्रबोध : (**चौंक कर**) मैं ? समुद्र के किनारे जैसा ?

निर्मल : हाँ।

प्रबोध : पर मैं नहीं समझता, मैं किनारे जैसा कैसे हूँ।

निर्मल : तुम्हें इसके समझने की ज़रूरत नहीं। यह तो मेरे समझने के लिए रह गया है। (**कंठ अवरुद्ध हो जाता है**)

प्रबोध : निर्मल ? यह तुम क्या कह रही हो ?

निर्मल : (**गहरी साँस लेकर**) मैं गिला नहीं कर रही प्रबोध। किसी के भाग्य में समुद्र बनना लिखा होता है, किसी के किनारा।

प्रबोध : (**कुछ न समझ कर**) समुद्र और किनारा ?

निर्मल : हाँ! देख रहे हो समुद्र को ? वह कितनी व्याकुलता, कितनी विह्वलता से किनारे के अन्तर को छूने की कोशिश करता रहता है। वह उसमें समाना और उसे अपने में समो लेना चाहता है। लेकिन किनारा ? वह उसकी हर लहर को, उसकी हर उमंग को ठुकरा कर लौटा देता है। कुछ देर तक किनारे का तन समुद्र के आँसुओं से गीला रहता है, लेकिन कुछ देर

बाद—कुछ देर बाद नमी भी गायब हो जाती है और किनारा समुद्र से अलग थलग, बेमतलब, बेपरवाह, अपनी जगह पड़ा रहता है।

प्रबोध : ओह ! आज फिर तानों के तीर फेंक रही हो ?

निर्मल : जिसके भाग में तीर खाना लिखा हो वह तीर फेंकेगा ? मेरे नसीब में आँसू लिखे हैं, सो मेरी आँख उनसे सदा भरी रहती है।

[**आवाज़ आँसुओं में रुद्ध हो जाती है**]

प्रबोध : निर्मल यह क्या ? आँसू ?

निर्मल : इन्हें पोंछने की कोशिश न करो प्रबोध। ये वह नहीं हैं जो पत्थर को पिघला दें।

प्रबोध : तो तुमने मेरे बारे में अन्तिम निर्णय कर लिया है निर्मल ? मुझे बेमुहब्बत, बेपरवाह किनारा और आँसुओं से न पिघलने वाला पत्थर समझ लिया है ?...(**गहरी साँस लेकर**) निर्मल, मैंने आज तक तुमसे नहीं कहा, लेकिन आज जब तुम मेरे बारे में सच के इतना निकट पहुँच गई हो तो मैं भी नहीं छुपाऊँगा—तुमने ग़लत नहीं समझा है।

निर्मल : (**चौंक कर**) प्रबोध !

प्रबोध : हाँ निर्मल, तुमने मेरे बारे में जो कुछ कहा है, वह शायद भावनाओं के बहाव में बह कर कहा हो। लेकिन इत्तफ़ाक से तुमने मेरे बारे में सच को पा लिया है। मैं सचमुच ही किनारे की तरह हूँ, वाक़ई पत्थर की तरह हूँ।

निर्मल : (**आहत आत्मसम्मान से**) लेकिन सिर्फ़ मेरे लिए। राधा के लिए नहीं।

प्रबोध : निर्मल, तुमने फिर एक औरत जैसी बात कह दी। यहाँ तुमने अपनी बुद्धि से नहीं, अपनी ईर्ष्या, अपनी स्पर्धा से काम लिया है।

निर्मल : **(प्रतिवाद के स्वर में)** यह ग़लत है। मैंने सच कहा है कि तुम किनारा और पत्थर हो तो मेरे लिए। राधा को तुमने वह सब कुछ दिया है जो एक आदमी एक औरत को दे सकता है।

प्रबोध : बता सकोगी कैसे ?

निर्मल : हाँ बता सकूँगी। राधा में क्या है प्रबोध ? वह सुन्दर नहीं। वह पढ़ी लिखी नहीं। वह तुम्हारे जैसे ऊँचे कुल की नहीं। बच्चा उसके नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी तुम उसे छोड़ने की बात नहीं सोच सकते, हालाँकि—हालाँकि तुम्हारी उसकी शादी समाज के सामने नहीं हुई।

प्रबोध : **(पूर्ण गाम्भीर्य से)** यह आख़िरी बात ग़लत है निर्मल। मैंने राधा का हाथ पकड़ कर उसे पत्नी कहा है। यह सच है मैं मन्दिर नहीं गया, मैंने पंडित नहीं बुलाया, मैंने रजिस्टर पर दस्तख़त नहीं किये, लेकिन इससे मेरे लिए कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। मेरा वचन वेदी के फेरे या रजिस्टर के दस्तख़त से किसी तरह कम मज़बूत नहीं है।

निर्मल : मैं मानती हूँ। लेकिन इस तरह तुम भी तो मान गए कि तुमने राधा को पत्नी मान कर वह सब कुछ······

प्रबोध : निर्मल ! जो मैंने नहीं कहा, उसे मुझ से सम्बद्ध न करो। मैंने केवल यह कहा है कि राधा मेरी पत्नी है। मैंने यह नहीं कहा कि मैंने उसे वह सब कुछ दिया है जो एक पति अपनी पत्नी को देता है।

निर्मल : लेकिन क्या यह भी कहने की ज़रूरत है ?

प्रबोध : हाँ, अगर सुनने वाली तुम जैसी समझदार और पढ़ी लिखी औरत हो।

निर्मल : कैसे ?

प्रबोध : इस तरह कि तुम जानती हो पति-पत्नी में केवल शारीरिक

सम्बन्ध नहीं होता। उनमें एक बौद्धिक और भावनात्मक आदान-प्रदान भी होता है। और यह ज़रूरी नहीं होता कि जिन लोगों में शादी का शारीरिक और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो जाए, उनमें यह बौद्धिक और भावनात्मक लेन-देन भी क़ायम हो जाए।

निर्मल : (**विस्मत हो**) प्रबोध !

प्रबोध : हाँ निर्मल। आज तुमने मुझ पर जिन बोलों से वार किया है, मैं उनकी ताब नहीं ला सकता। आइन्दा तुम मुझे इन तीरों से जख़्मी न करो, आइन्दा तुम उस रिश्ते को सही तौर से समझ सको जो तुम्हारे मेरे बीच है, इसके लिए मुझे वह सब कुछ बताना होगा, जो मैंने आज तक किसी को नहीं बताया। निर्मल, तुम जानती हो साज़ कई तरह के होते हैं।

निर्मल : हाँ।

प्रबोध : अधिकतर साज़ ऐसे होते हैं जिनमें कई तार होते हैं। लेकिन एक साज़ ऐसा होता है जिसमें सिर्फ़ एक तार होता है।

निर्मल : इकतारा।

प्रबोध : हाँ, इकतारा। यह साज़ एक ही तार से राग निकालता है। किसी दूसरे तार के सुरों की संगति की इसे ज़रूरत नहीं होती।

निर्मल : (**विस्मय से**) प्रबोध।

प्रबोध : हाँ निर्मल। कुछ तबीयतें ऐसी भी होती हैं जो अपने अस्तित्व की गहराई में अकेली रहना चाहती हैं; जो अपनी साध और अपने सपनों का इकतारा लेकर आती हैं और उसके सुरों की गूँज में लीन, जीवन के प्रभात से निकल कर जीवन की साँझ के धुंधलकों में गुम हो जाती हैं, लेकिन किसी दूसरे तार की, किसी अन्य साज़ की संगति का सहारा नहीं लेती। वे अकेली आती हैं और अकेली चली जाती हैं।

निर्मल : (**विकल होकर**) ऐसे न कहो, प्रबोधऐ से न कहो।

प्रबोध : आज तक नहीं कहा, निर्मल। आज भी न कहता, क्योंकि बहुत कम लोग हैं, जिन्होंने मुझे समझा है। लेकिन आज तुमने मुझे समझ लिया तो मैं जीवन के सारे पन्ने तुम्हारे सामने रख दूँगा, ताकि तुम वह गलती न करो जो विमला ने की थी।

निर्मल : विमला ने ? कौन विमला ?

प्रबोध : तुम नहीं जानतीं, राधा नहीं जानती, सिर्फ़ मेरी माँ जानती है। वह हमारे पड़ोस की एक लड़की थी। उन दिनों मैं कालेज में पढ़ता था। वह मेरे घर आया करती थी। न जाने कैसे उसने मुझसे मुहब्बत करनी शुरू कर दी—एक ऐसी ख़ामोश दबी-दबी पर अति गहरी मुहब्बत, जो मुहब्बत नहीं एहसान होती है; ऐसा एहसान जो एक औरत ही एक मर्द पर कर सकती है—उसे दुनिया का सबसे सुन्दर, सबसे सुयोग्य, और प्यार तथा प्रशंसा के योग्य मानकर······

[फ्लैश बैक शुरू होता है]

प्रबोध : विमला !

विमला : जी !

प्रबोध : तुम ये सब कुछ रोज़ क्यों करती हो ? तुम मेरी किताबें संजोती हो; मेरा कमरा सँवारती हो; मेरे कपड़े तह करती हो; मेरे लिए स्वेटर बुनती हो; और मेरे पलँग की चादरों और तकिये के ग़िलाफ़ों पर फूल काढ़ती हो। तुम ये सब कुछ क्यों करती हो ? बोलो, विमला (**भावुकता के स्वर में**) मुझ पर इतना एहसान किस लिए ?

विमला : एहसान ? आप पर ?

प्रबोध : हाँ, विमला। बादल बरसता है तो धरती पर एहसान करता है। सूरज चमकता है तो सृष्टि पर एहसान करता है।

औरत किसी से प्यार करती है तो उस पर एहसान करती है।

विमला : और जो किसी को अपने ऊपर यह एहसान करने देता है वह ?

प्रबोध : (**प्रभावित होकर**) विमला !

विमला : अगर मुझ पर इतना एहसान किया है तो इतना एहसान और कर दो कि मुझे सदा यह एहसान करने देना, नहीं तो···नहीं तो···मैं जी न सकूँगी।

[**रोती हुई बाहर निकल जाती है**]

[**फ्लैश बैक समाप्त**]

निर्मल : वह तुम्हें इतना प्यार करती थी ?

प्रबोध : हाँ। वह प्यार जो ममता, सेवा, त्याग, तपस्या, श्रद्धा और सपनों के संगम पर कमल की तरह खिलता है; वह प्यार जो कौमार्य की उमंग और सुहाग की साध के संयोग से केवड़े के फूल की तरह खिल कर व्योम को सुगन्ध से बोझल कर देता है। इस प्यार को पाकर कोई भी पुरुष अपने भाग्य को सराह सकता था; अपनी कामनाओं के आलों में आशा के दीप जला सकता था। लेकिन मैं—मैं ने पहली बार महसूस किया मैं किसी के अस्तित्व में गुम होने के लिए नहीं हूँ। मैं प्यार की उस धारा में पैर रखने के लिए नहीं हूँ, जो मुझे बहा कर ले जाए और जगत के उस समुद्र में डाल दे, जहाँ सब इन्सान आम कोशिशों, आम गमों, आम जरूरतों और आम सहूलतों के लिए दिन-रात एक अंधकारमय संघर्ष में जुटे रहते हैं।

[**फ्लैश बैक शुरू होता है**]

प्रबोध : माँ, मैं आखिरी बार कहता हूँ, मैं शादी नहीं करूँगा।

माँ : पर क्यों नहीं करेगा ? किस लिये नहीं करेगा ?

प्रबोध : इसलिए कि मैं अकेला रहना चाहता हूँ।

माँ : अकेला रहना ? दिमाग़ तो खराब नहीं हो गया तेरा ?

प्रबोध : शायद खराब हो गया है माँ। और मैं उसे दुरुस्त करना नहीं चाहता।

माँ : कैसे नहीं चाहता। क्या तेरी ज़िद चलेगी, मेरी नहीं।

प्रबोध : इस मामले में तो मेरी ही ज़िद चलेगी माँ।

माँ : (**आहत होकर**) क्या कहा ? तू मेरी बात टालेगा ? राय साहब की लड़की विमला से शादी नहीं करेगा ? जो वायदा मैंने किया है, उसे तुड़वा कर रहेगा ?

प्रबोध : हाँ हाँ, शायद यह सब कुछ होगा।

माँ : प्रबोध, तुझे क्या हो गया है ? सोच तो वह लड़की विमला मेरी और तेरी कितनी सेवा करती है ? जिसके घर में चार चार नौकर हैं, वह तेरे घर आकर तेरी माँ के काम में हाथ बटाती है। और राय साहब, इतने अमीर होकर अपनी इकलौती बेटी का रिश्ता लेकर तीन-तीन बार आये हैं। तुझे इन बातों का ख्याल नहीं ?

प्रबोध : ख्याल है माँ और शायद इन्हीं बातों का ख्याल करके मैंने कहा है, मैं यहाँ रिश्ता नहीं करूँगा। विमला का असीम प्यार, रायसाहब की इतनी बड़ी सम्पत्ति—शायद इन्हीं के डर से मैं यह रिश्ता मंजूर न कर सकूँगा माँ।

माँ : (**क़तई न समझ कर**) क्या ? इन्हीं की वजह से ?

प्रबोध : हाँ हाँ। पर तुम न समझ सकोगी। तुम्हारी समझ में न आ सकेगा कि आदमी प्यार से भाग सकता है; दौलत से दूर जा सकता है; हंगामे और रिश्तों से रस्सा तुड़ा सकता है। इन्सान पहाड़ की चोटी पर खड़े हुए इकलौते पेड़ की तरह हो सकता है, जो अपने अकेलेपन ही में मग्न रहता है।

माँ : (**काँप कर**) तो···तू सन्यासी होने की बात कर रहा है ?

प्रबोध : सन्यासी ? (**हँसता है**) सन्यासी और मैं ? माँ सन्यासी संसार से नफ़रत करता है, पर तुम्हारा बेटा संसार से प्यार

करता है। हाँ, वह अपने आप को दूसरों के पूरी तरह हवाले करना नहीं चाहता। वह अपने मन के भीतरी भाग में किसी का संग नहीं चाहता। वह वहाँ अकेला रहना चाहता है—अकेला अपने बेशक्ल, बेमानी, बेमतलब, ख्वाबों और ख्यालों के साथ।

माँ : बेशक्ल, बेमानी, बेमतलब ख्वाबों और ख्यालों के साथ? तू क्या कह रहा है प्रबोध?

प्रबोध : जो तुम न समझ सकोगी माँ, और शायद इसलिए कि तुम औरत हो।

[**विमला के पिता का प्रवेश**]

विमला के पिता : पर मैं मर्द हूँ, मुझे समझाओ बेटा। आखिर तुम शादी करना क्यों नहीं चाहते?

प्रबोध : बाबूजी, मैं आपको भी कैसे समझाऊँ, आप भी न समझ सकेंगे।

पिता : इस लिए कि समझने की बात नहीं है। बेटा, रिश्ते के लिए दो बातें ज़रूरी होती हैं। लड़की अच्छी हो और घराना अच्छा हो। विमला कैसी है, क्या है, मुझे बताने की ज़रूरत नहीं। मेरे पास क्या है—वह तुम से छिपा नहीं है। ऐसी सूरत में किसी लड़के को शादी से ऐतराज़ हो, यह किस आदमी की समझ में आ सकता है?

प्रबोध : आपने ठीक ही कहा बाबूजी। इस बात को शायद खुद मैं भी बड़ी मुश्किल से समझ सका हूँ। लेकिन अब मैं बता सकता हूँ कि मैं उस रिश्ते से, उस सुख से, उस काम से, उस बन्धन से खौफ़ खाता हूँ, जो मुझे इस तरह जकड़ ले कि मैं अपनी साध और अपने सपनों के संसार में न रह सकूँ।

पिता : यह क्या बात कही तुमने?

प्रबोध : यह वही बात है जो महसूस आपने भी की होगी बाबूजी। कभी कभी इन्सान का जी चाहता है वह इस दुनिया से, इस दुनिया के हंगामों से, इस दुनिया की माँगों से भाग कर चला जाए—दूर, इतनी दूर कि उसके अस्तित्व से इस संसार की परछाईं इस तरह उठ जाए जिस तरह पहाड़ों पर से धुँध।

पिता : तुम पागल तो नहीं हो गये ?

प्रबोध : (**थके लहजे में**) शायद मैं पागल हूँ, बाबूजी। आप ऐसा ही समझें तो बेहतर होगा।

[एक फ्लैश बैक कट यानी समाप्त, दूसरा फ्लैश बैक शुरू]

विमला : मेरे लिये यही बेहतर होगा ?

प्रबोध : (**गहरी साँस छोड़ते हुए**) हाँ विमला। तुमने जिस पेड़ की छाया से आस लगाई है, वह सूरज चढ़ने के साथ सिकुड़ती जाएगी और ठीक उस समय जब तुमको छाया की सब से ज़्यादा ज़रूरत होगी, तुम्हें मालूम होगा छाया सिमट कर पेड़ के तने में समा गई है; तुम खजूर के एक ऐसे वृक्ष के तले खड़ी रह गई हो जो, केवल अपने को छाया देता है, दूसरे को नहीं।

विमला : लेकिन जब तक मुझे यह दिखाई देता रहेगा कि तुम छाया में हो, मुझे अपने लिये छाया की ज़रूरत न होगी। तुम्हारे सहारे मैं धूप में तप कर भी जीवन काट लूँगी।

प्रबोध : लेकिन यह मुझे सहन नहीं होगा विमला। मैं अपनी दुनिया में रहना चाहता हूँ, लेकिन इस तरह नहीं कि कोई अपनी दुनिया गँवा दे और मेरी दुनिया न पा सके। विमला, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ मेरी तबीयत कैसी है, मैं क्या हूँ। विमला मैं तुम्हें बताऊँ, मैं…मैं शायद किसी से पूरी तरह प्यार नहीं कर सकता। किसी का पूरी तरह ध्यान नहीं रख सकता। मैं बीच धारा में विमुख और बेपरवाह हो सकता हूँ।

विमला : लेकिन मुझे तुम्हारे हाथों बीच धारा में डूबना मंजूर है, तुम्हारे बिना एक पल जीना मंजूर नहीं।

प्रबोध : (**बड़ी भावना के साथ**) विमला, विमला, तुम अभी बच्ची हो, अभी अपने को नहीं समझ सकतीं। तुम्हें नहीं मालूम जब तुम मुझे पा लोगी तब तुम मुझ से वही चाहोगी, जो हर पत्नी अपने पति से चाहती है। एक बार तुम्हारा हाथ पकड़ कर मुझे भी सदा उसी तरह सोचना और वही करना होगा, जिसमें कि तुम्हारा, हमारे बच्चों का भला हो। मैं, मैं न रहूँगा, पति और पिता और बाबा बन जाऊँगा। और अपने व्यक्तित्व, अपने अस्तित्व को यूँ गँवाना, दुनिया के आम साँचों में यूँ ढलकर समाप्त करना, मुझे मंजूर नहीं, क़तई मंजूर नहीं।

[**फ्लैश बैक समाप्त**]

निर्मल : तो तुमने शुरू से प्यार का यही जवाब दिया है ?

प्रबोध : हाँ निर्मल। मैंने एक हद तक हर उस आदमी को निराश किया है जो मेरे लिये प्यार ममता या मुहब्बत ले कर आया है। लेकिन मुझे यह तसल्ली है कि मैंने हर आदमी को समय से पहले सावधान कर दिया है, मैं उनके प्यार का पात्र, उनकी मुहब्बत का हक़दार नहीं हूँ। और यह महज़ मुहब्बत ही के मामले में नहीं रहा। ज़िन्दगी के दूसरे बन्धन बाँधने भी जब कोई आया, मैंने यही कहा—मेरे लिये इन बन्धनों का बन्दोबस्त न करो, इन बेड़ियों के कुण्डे न ढालो।

[**फ्लैश बैक शुरू**]

चाचा : यह तुम क्या कह रहे हो बेटा ?

प्रबोध : मैं ठीक कह रहा हूँ चाचा जी। मेरे लिए पक्की नौकरी का प्रबन्ध न कीजिए।

चाचा : पर क्यों ?

प्रबोध : इसलिए कि मैं अधिक समय नौकरी न कर पाऊँगा। मैं किसी ऐसी नौकरी में पड़ना नहीं चाहता, जो मुझे बाँध ले जिसमें रहने की, तरक़्क़ी करने की, ऊँचा ओहदा पाने की चाह मेरे अन्दर जड़ जमा ले; और मैं अपनी न सोच सकूँ, नौकरी की सोचने लग जाऊँ।

चाचा : अजीब बात कह रहे हो प्रबोध बेटा। बिना नौकरी के क्या करोगे, घर कैसे चलाओगे ?

प्रबोध : चाचा जी, मैं तब तक ही नौकरी करूँगा जब तक माँ ज़िन्दा है। पिता जी के बाद माँ ने मुझ से आस लगाई है। इन्होंने मेरे लिए तरह-तरह की तकलीफ़ें उठाई हैं। मैं नौकरी करूँगा तो केवल इसलिए कि वह और कष्ट न उठाये, अधिक मेहनत न करें। इसलिए मैं केवल वह नौकरी करूँगा जो कच्ची हो; जो इतनी छोटी हो कि मुझे कभी न पकड़ सके; जिसे मैं जब चाहूँ छोड़ सकूँ।

चाचा : तुम टेलीफोन एक्सचेंज की कच्ची नौकरी इसी लिए कर रहे हो ?

प्रबोध : हाँ चाचा जी। और इसी लिए मुझे रेलवे की पक्की नौकरी नहीं चाहिए जो मेरी ज़िन्दगी में लोहे की वे पटरियाँ बिछा दे, जिनके लगे बँधे रास्ते पर चलते चले जाना, मेरी क़िस्मत और मेरे अस्तित्व की मजबूरी बन जाय।

चाचा : तो तुम ज़िन्दगी कैसे काटोगे ?

प्रबोध : मैं थोड़ा-बहुत, ग़लत-सलत लिखने लगा हूँ। अख़बारों और मैगज़ीनों में लिखकर इतना ज़रूर कमा लूँगा कि भूखा न मर सकूँ।

चाचा : और तुम्हारे बीवी बच्चे ?

प्रबोध : वे शायद नहीं होंगे चाचा जी। मैं उनकी माँगें पूरी न कर सकूँगा, इसलिए उनका दख़ल मेरी ज़िन्दगी में नहीं होगा।

चाचा : तुम भूल करते हो प्रबोध। तुम अभी बच्चे हो। जिन्दगी में साथी के बिना काम नहीं चलता—तुम इस सचाई से नावाक़िफ़ हो। याद रखो कभी न कभी तुम्हें किसी के साथ की ज़रूरत होगी।

प्रबोध : यह मैं भी महसूस करता हूँ चाचा जी, लेकिन ज़िन्दगी में जब किसी का हाथ पकड़ूँगा तब यह इतमीनान ज़रूर कर लूँगा कि वह मुझ से इतना ज्यादा माँग न करेगी, कि मैं उसका हाथ छोड़ कर आगे बढ़ जाऊँ।

चाचा : (**काँप कर**) तुम उसे छोड़ दोगे ?

प्रबोध (**पूरी गंभीरता से**) हाँ चाचा जी। जो मुझे सौ फ़ी सदी अपनाना चाहेगा, जो मुझ पर इतना बोझ डालेगा जिसे उठाने के लिए मुझे दुनिया के आम आदमियों की तरह काम काज, दौड़-धूप, धोखा-बेईमानी करनी पड़े, मैं उसे छोड़ जाऊँगा।

चाचा : तुम कैसे आदमी हो ?

प्रबोध : जैसे कुछ बच्चे होते हैं चाचा जी। आपने कुछ बच्चों को देखा होगा। उनके इर्द-गिर्द भाँति-भाँति के खिलौनौ पड़े रहते हैं। दूसरे बच्चे आकर उन खिलौनों से खेलते हैं। वे उनके लिए लड़ते हैं, झगड़ते हैं, छीना-झपटी करते हैं। लेकिन वह बालक—वह उन खिलौनों के बीच, उनसे विरक्त न जाने कहाँ, किस चीज़ में, किस ख़्याल में या किस बे-ख़्याली में गुम, खोया, डूबा बैठा रहता है। उसकी खुशी इसी में होती है कि कोई उसकी उस दुनिया में दख़ल न दे, जिसमें इस दुनिया का कोई दख़ल नहीं है।

चाचा : (**भयभीत होकर**) तुम साधु बनोगे ?

प्रबोध : साधु ? (**हल्के से हँसता है**) साधु बनना, अपने से ज़बर्दस्ती करना है चाचा जी। और मैं तो उस तरह जीना चाहता

हूँ, जिस तरह जीने के लिए मुझे अपने आप से क़तई ज़ब-दस्ती न करनी पड़े।

[फ्लैश बैक समाप्त]

निर्मल : ओह, तो यह है, वह कारण जिसके लिए तुम आज तक किसी नौकरी पर टिके नहीं हो; हर नौकरी ऐन उस वक्त छोड़ दी, जब नौकरी करने के क़ाबिल हुई। पिछले दिनों जो सरकारी नौकरी तुमने हाथ से जाने दी, वह भी इसी लिए न ?

प्रबोध : हाँ निर्मल ! पिछले महीने जो नौकरी तुमने मेरे लिए तय की थी, वह बहुत अच्छी थी। एक सरकारी मैगज़ीन की एडीटरी—एक लिखने-पढ़ने वाले के लिए इससे ज़्यादा उप-युक्त, इस से ज़्यादा तनख्वाह वाली नौकरी और कौन सी हो सकती है। लेकिन मैंने महसूस किया मेरे लिए इस से ज़्यादा ख़तरनाक नौकरी भी और कोई नहीं हो सकती। अगर मैंने यह नौकरी क़बूल कर ली तो इसकी माल चढ़ते ही मेरी ज़िन्दगी की गरारियाँ मेरी चाह के मुताबिक़ नहीं चलेंगी, वे नौकरी की तूफ़ानी लपेट में फँस कर मेरी मर्ज़ी, मेरी पसन्द, मेरी स्वेच्छा का खून करती हुई मेरे जीवन में वह शोर भर देंगी, जो मेरी आत्मा की शान्ति की मौत होगा।

निर्मल : लेकिन क्या शान्ति बरक़रार है ? क्या गरारियाँ माल की लपेट से मुक्त हैं ?

प्रबोध : मैं जानता था तुम यही पूछोगी। तुम राधा को मेरी हार कहोगी। लेकिन मैंने यह कभी नहीं कहा था कि मैं साधु-सन्यासी बनूँगा। मैंने महज़ अपने तरीके से रहने की कोशिश की है।

निर्मल : (**बड़े व्यंग्य से**) और राधा इस कोशिश ही की एक कड़ी है ?

प्रबोध : (**गंभीरता से**) हाँ निर्मल ! और शायद एक बहुत भरोसे की कड़ी, जिसने अब तक तो जवाब नहीं दिया।

निर्मल : (**आहत होकर**) प्रबोध !

प्रबोध : मुझे मालूम था यह तुम्हें बुरा लग सकता है, तुम्हारी भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है। लेकिन निर्मल, शायद मैं राधा से बेहतर औरत के क़ाबिल नहीं हूँ।

निर्मल : तुम ? एक प्रतिभाशाली लेखक ?

प्रबोध : हाँ ! क्योंकि मैं बहुत प्यार करने योग्य इन्सान नहीं हूँ। मैं एक ऐसा इन्सान हूँ, जो मिलते हुए भी दूर रहता है; साथ रहते हुए भी जुदा रहता है; आगे बढ़ते हुए भी पीछे हटता है; जो रिश्ते में दूरी का और दूरी में रिश्ते का क़ायल है।

निर्मल : (**विस्मय से**) प्रबोध !

प्रबोध : हाँ निर्मल ! मेरे साथ एक ऐसी ही औरत रह सकती है जिसे यह सब कुछ क़बूल हो। जो या तो खुद अपने खोल में रहना चाहे या जिसकी माँगें इस क़दर सीमित हों कि वह घड़ी ही न आये, जब वह मेरे मन के उस द्वार पर दस्तक दे, जहाँ मैं अपने सिवा किसी की उपस्थिति नहीं चाहता।

निर्मल : (**ईर्ष्या से**) और राधा वह औरत है ?

प्रबोध : हाँ निर्मल ! यह ठीक है कि मैंने उसकी माँ के मर जाने और उसके अकेली बे सहारा रह जाने के बाद उसे सहारा दिया। लेकिन यह कहना गलत होगा कि दया और सहानुभूति ने इस सम्बन्ध की सृष्टि की। शायद मैंने ठोंक बजाकर देख भी लिया था कि राधा वह औरत है जिसकी शाखें फैल कर मेरी राह की रुकावट न बनेंगी।

[**फ्लैश बैक शुरू**]

प्रबोध : राधा, कैसी हैं तुम्हारी माँ ?

राधा : (**भाव-हीन स्वर में**) अब तो ठीक लगती हैं।

प्रबोध : चलो अच्छा हुआ, वरना कल तो बड़ी तकलीफ़ थी ।

राधा : (**बड़े भाव शून्य लहजे में**) पर वह बचेगी नहीं ।

प्रबोध : (**तनिक आहत होकर**) राधा !

राधा : उसके पैरों पर सूजन आ गई है । और जिसके पैरों पर सूजन आ जाए.......

प्रबोध : ऐसा न कहो राधा । तुम्हारी माँ के कानों में ऐसी बात नहीं जानी चाहिए ।

राधा : क्यों ?

प्रबोध : (**बौखला कर**) क्यों ? राधा ऐसा कहना अच्छा नहीं लगता ।

राधा : (**वही भाव शून्य लहजा**) इसमें अच्छे-बुरे की क्या बात है ? जिसे मरना है, मरेगा ।

प्रबोध : तो क्या.......अगर उन्हें कुछ हो जाए तो तुम्हें कुछ नहीं लगेगा ?

राधा : लगेगा कि वह तो छूट गई दुख जंजाल से (**गहरी साँस लेकर**) मैं पड़ी रह गई ।

प्रबोध : पर...फिर तुम...अकेली रह लोगी ?

राधा : रोटी मिल जाए, अकेले-दुकेले की क्या है ?

प्रबोध : (**हतबुद्धि-सा होकर**) तुम्हें बस रोटी चाहिए ?

राधा : और क्या ? रोटी कपड़े के सिवा आदमी को क्या चाहिए ?

प्रबोध : (**विस्मित स्वर में**) और कुछ नहीं ?

राधा : और क्या चाहिए ?

प्रबोध : तुमको....तुमको....तुम शादी करना नहीं चाहोगी ? आदमी ...बच्चे.. ?

राधा : मेरी माँ को आदमी मिला, बच्चे मिले, उसने क्या सुख पाया ? ये सुख थोड़ा ही हैं, दुख हैं, पिछले जन्म के पापों के भोग हैं । जितने बुरे कर्म होते हैं, उतने ही आदमी और बच्चों के रूप में फल भोगने पड़ते हैं ।

प्रबोध : **(अपने अन्तर में प्रसन्न होकर)** तुम···तुम सच कहती हो ?

राधा : इसमें झूठ क्या है ? मैं आपसे झूठ क्यों बोलूंगी ?

प्रबोध : यानी तुम दुनिया से कुछ नहीं चाहोगी। तुम्हें और किसी चीज़ की दरकार न होगी अगर तुम्हें रोटी मिल जाए, कपड़ा मिल जाए, एक ठिकाना मिल जाए ?

राधा : पेट की आग बुझ जाए, तन की आबरू ढक जाए, हाथ-पैर आख़िरी दम तक चलते रहें, मुझे तो फिर किसी चीज़ की ज़रूरत न होगी।

प्रबोध : अच्छा राधा मान लो···मान लो एक आदमी है, जो अच्छा हो, नेक हो, थोड़ा-बहुत कमाता हो। लेकिन जो अपने में मग्न रहता हो, जो अपनी मर्ज़ी से घर आए, अपनी मर्ज़ी से बाहर जाए; जो खाने-पीने का ख्याल रक्खे पर दूसरे के मन की न पूछे; जिसे बहुत कमाने, बहुत अच्छी तरह रहने की, बहुत बाल-बच्चे पैदा करने की चाह न हो। अगर वह किसी औरत से शादी कर ले तो वह औरत दुखी न होगी ?

राधा : वह औरत दुखी रहेगी ? यह तुमने भली कही। मैं हूँ उसकी जगह तो कभी दुखी न हूँ। ऐसा आदमी अगर सुख न देगा तो दुख भी तो न देगा। अगर वह अपने में मग्न रहेगा तो दूसरे को भी तो अपने में मग्न रहने देगा। अपनी नींद सोना, अपनी नींद उठना—इससे बड़ा सुख क्या होगा ?

[फ्लैश बैक समाप्त]

प्रबोध : और निर्मल जब मैंने यह सुना और राधा के चेहरे की ओर देखा तो मैंने पाया—इस औरत के व्यक्तित्व में दूसरा परत नहीं है। यह एक ही सतह पर जीती है। यह जो कहती है, उसमें विश्वास रखती है। यह उन औरतों में से है जिनकी अपनी कोई माँग नहीं होती और जो दूसरे की कोई माँग पूरी नहीं करतीं। ये जिन्दगी से बस इतना चाहती हैं कि जिन्दगी

कट जाए—अच्छी न कटे, बुरी न कटे, बस कट जाए—ऐसे, जैसे गहरी नींद में रात।

निर्मल : और तुम्हारी ज़िन्दगी वैसी ही निश्चिन्तता से कट रही है, जैसे गहरी नींद में रात ?

प्रबोध : हाँ, जहाँ तक निश्चिन्तता का, शान्ति का, सुगमता का सम्बन्ध है, ज़िन्दगी बिल्कुल वैसे ही कट रही है। मैं स्वीकार करता हूँ कि भावना के स्तर पर उसने मुझे कुछ नहीं दिया; बौद्धिक दृष्टि से वह कुछ दे नहीं दे सकती; बच्चा उसके हो नहीं सकता; लेकिन मैं यह क़बूल किये बिना भी नहीं रहूँगा कि उसने मुझ से कुछ माँगा भी नहीं है। उसने मुझे वैसे जीने दिया जैसे जीना मैंने चाहा है।

[**फ्लैश बैक शुरू**]

प्रबोध : राधा।

राधा : जी।

प्रबोध : ये रुपये रख लेना।

राधा : लाइये।

प्रबोध : **(यह देख कर कि राधा ने कुछ नहीं पूछा, स्वयं व्याख्या करने की नीयत से)** बात यह है राधा मैंने नौकरी छोड़ दी है। सत्रह दिन काम करने की तनख़्वाह है।

राधा : अच्छा। ये निचले ट्रंक में रख दूँ, या ऊपर सूटकेस ही में रहने दूँ ?

प्रबोध : कहीं रख दो। लेकिन तुमने यह तो पूछा ही नहीं कि मैंने नौकरी क्यों छोड़ दी ?

राधा : कोई बात हुई होगी। और बात न भी हुई तो जी न किया होगा। इसमें पूछने की क्या बात है ?

प्रबोध : क्यों, बात क्यों नहीं है ? मान लो मैंने नौकरी छोड़ कर गलती की हो।

राधा : लेकिन अब तो कर ली। जो हो गया सो हो गया।

प्रबोध : लेकिन अगर जल्द दूसरी नौकरी न मिली तो···

राधा : तो क्या होगा ? जैसा रूखा-सूखा मिलेगा खा लेंगे।

बोध : तुम्हें दुख न होगा ?

राधा : दुख काहे का होता। मतलब तो पेट की भूख मिटाने से है। मिस्सी रोटी से भी मिट जाती है।

प्रबोध : और अगर मिस्सी भी न मिली ?

राधा : तो जैसे माँ के घर भूखी रही हूँ, ऐसे यहाँ भी रह लूंगी।

प्रबोध : (**निश्चिन्तता की गहरी साँस लेकर**) तो फिर ठीक है। लेकिन देखो एक काम करो। इन रुपयों में से तुम एक तो खाने-पीने की सब चीज़ें ले आओ। जो बच जाएँ उन्हें अपने पास रखना। मैं कुछ दिन के लिए एक दोस्त के पास जा रहा हूँ नैनीताल।

राधा : कितने दिन में आ जाओगे ?

प्रबोध : राधा, मुझे अपना अधूरा नाविल पूरा करना है। यहाँ एक तो दोस्त और आने जाने वाले तंग करते हैं। वक्त बहुत ख़राब होता है। दूसरे गर्मी बेहद है। नैनीताल चला जाऊँगा तो नाविल पूरा हो जाएगा। मेरे दोस्त ने तो यह भी लिखा है कि तुम्हें भी साथ ले आऊँ, लेकिन······

राधा : नहीं नहीं···मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी ? मैं यहीं ठीक हूँ। तुम अपना काम पूरा कर आओ।

प्रबोध : कोई तकलीफ़ हो या परेशानी हो तो मुझे ख़बर करवा देना। मैं फ़ौरन आजाऊँगा।

राधा : तुम बेफ़िक्र होकर जाओ। मुझे ऐसी कोई तकलीफ़ नहीं होगी जो तुम्हें काम अधूरा छोड़ कर आना पड़े।

[फ्लैश बैक समाप्त]

निर्मल : तो ये हैं वे खूबियाँ जिन्होंने एक बड़े लेखक का मन मोह

रखा है ?

प्रबोध : नहीं निर्मल, ये हैं वे रियायतें जो राधा ने इस आदमी को दे रखी हैं, जिसे तुम बड़ा लेखक कहती हो।

निर्मल : लेकिन क्या तुम समझते हो कि ये रियायतें राधा ही दे सकती है ? दुनिया की कोई और औरत नहीं दे सकती ? क्या जितने बड़े लेखक हुए हैं वे सब ऐसी ही औरतों के कारण लिख पाये हैं ?

प्रबोध : यह मैंने कब कहा निर्मल। राधा मेरे अन्दर लेखक के लिए जरूरी नहीं हैं। वह मेरे अन्दर उस आदमी के लिए ज़रूरी है, जो दूसरे के बन्धन में बँधना नहीं चाहता। जो बार-बार अपने अन्तर की कोठरी में लौटकर अकेला रहना चाहता है।

निर्मल : और लेखक ?

प्रबोध : **(एक गहरी साँस लेकर)** वह जिसे चाहता है, तुम अच्छी तरह जानती हो।

निर्मल : **(सचेत होकर)** प्रबोध, अब मुझे और मत बहलाओ। मैंने कोई पुण्य नहीं किया, लेकिन ऐसा पाप भी तो नहीं किया, कि तुम यूं मेरी भावनाओं को आशा और निराशा की सीमा पर भटकते रहने के लिये छोड़ दो।

प्रबोध : निर्मल ! मैं तुम्हें किस तरह बताऊँ कि मैंने भी तुम्हें अपने पास रखना चाहा है। तुम शायद यक़ीन न करोगी कि जिस लहर ने मेरे अन्तर की प्यासी और तपती रेत को अपने प्यार के शीतलता से शान्त किया है, वह तुम हो। अगर मेरे मन और मस्तिष्क दोनों ने मिल कर किसी को चाहा है, तो वह तुम और महज तुम हो।

निर्मल : लेकिन फिर यह फ़ासला ? यह दूरी ?

बोध : यह मेरी हृदयहीनता या भावशून्यता की निशानी नहीं है, निर्मल। यह मेरी इस सावधानी की सूचक है कि जिसने

मुझे मेरे जीवन की सब से मूल्यवान निधि प्रदान की है, जिसने मेरी साध और मेरे सपनों के संसार में दिये जलाए हैं, वह मेरे अन्तर में बैठे उस विरक्त, विमुख, उदासीन आदिवासी का शिकार न हो जाए, जो किसी का नहीं हो सकता ।

निर्मल : (**प्रतिवाद के स्वर में**) यह तुम्हारा विचार है प्रबोध । मैं अपने प्यार से, अपनी सेवा से उसको भी अपना बना सकती हूँ ।

प्रबोध : नहीं निर्मल । मुझे अच्छी तरह मालूम है तुम इस में कामयाब नहीं हो सकतीं । मेरा वह अंश न किसी का बनना चाहता है न किसी को अपना बनाना चाहता है । वह तो एक चाह है इस संसार से विरक्त रहने की, इस दुनिया के हंगामों से परे रहने की, वह तो चाह है खो जाने की—उन ख़्वाबों में जिनके पीछे इस दुनिया का कोई ख़्याल न हो; ख़्यालों में जिनके पीछे इस दुनिया का कोई ख़्वाब न हो।

निर्मल : (**पूर्ण बौद्धिक विद्रोह के साथ**) नहीं प्रबोध । वह चाह है दुनिया से सब कुछ लेने की और दुनिया को कुछ न देने की । वह चाह है सब को अपने सांचे में ढालने की और खुद किसी के साँचे में न ढलने की । वह चाह है किनारे पर धूप सेंकने की और सेंक कर फिर जल में चले जाने की । यह स्वार्थ का, स्वेच्छाचार का, आत्म-प्रतिष्ठा का सबसे प्रचण्ड और सब से अमानवीय रूप है ।

प्रबोध : (**बौद्धिक प्रहार से हतबुद्धि होकर**) निर्मल !

निर्मल : हाँ । आज जब मैंने तुम्हें पूरी तरह जाना है तो मैं कहे बिना नहीं रहूँगी कि तुमने अपनी भावना को सदा दूसरों की भावना के ऊपर रखा है। तुमने सदा चाहा है कि दूसरों की भावनाओं के तार टूट जाएँ । वे अपने सुरों से गूँजते हुए साज़ न रहें—

लकड़ी के बेसुर, बेतरब, बेग्रावाज़ टुकड़े बन जाएँ। ग्रौर जब वे यूँ गूँगे, बे-ग्रावाज़, बे-हस्ती हो जाएँ, तो तुम ग्राग्रो ग्रौर उन पर ग्रपनी हस्ती का तार मंढ कर उन्हें ग्रपना लो, ताकि उनसे भी वही स्वर निकले जो तुम्हारा ग्रपना सुर है।

प्रबोध : (**बुरी तरह बौखला कर**) निर्मल !

निर्मल : हाँ प्रबोध। राधा के रूप में तुम्हें लकड़ी का वह टुकड़ा मिल गया है, जिस पर ग्रपना तार मंढ कर तुम उससे भी ग्रपने ही सुर निकाल सकते हो। लेकिन याद रखो, ग्रपने को दूसरों के तारों से वंचित करने से जो साज़ बनता है वह इकतारा होता है ग्रौर इकतारा दुनिया की महफ़िल का साज नहीं होता; वह उन लोगों का साज़ होता है जो दुनिया की महफ़िल से निकाले हुए होते हैं या जो दुनिया की महफ़िल को उसके सुरों से वंचित रखना चाहते हैं।

[**समाप्त**]

डाक्टर
बीबी

पात्र

सुरेश	:	एक नवयुवक
रमेश	:	सुरेश का मित्र
रानी	:	सुरेश की पत्नी
मिसेज डेविड	:	मेडिकल कालेज की प्रिंसिपल
रामू	:	सुरेश का नौकर

[**सुरेश का ड्राइंग रूम। सुरेश के साथ उसका मित्र रमेश प्रवेश करता है। रमेश के हाथ में सूटकेश है, जिससे पता चलता है कि वह बाहर से आया है। सूटकेस रखकर वह सुरेश के कमरे में जगह-जगह गहरे साँस लेकर कमरे को सूँघता है।**]

रमेश : अबे सुरेश, यह तो बता कि यह घर है या अस्पताल ?

सुरेश : (**मुस्करा कर**) क्यों क्या बात है ?

रमेश : बात यह है कि मैंने बरामदे में क़दम रखा था तो फिनाइल की बू आई थी। अन्दर कमरे में गया था तो मच्छर-मार तेल की बू ने स्वागत किया था। अब ड्राइंग रूम में आया हूँ तो डी० डी० टी० पाउडर की खुश्क बू नाक में धँसी जाती है। यह माजरा क्या है ?

सुरेश : माजरा कुछ नहीं, महज़ सफ़ाई है, जो यहाँ रोज़ की जाती है।

रमेश : लेकिन इस रासायनिक और बूदार सफ़ाई की क्या ज़रूरत आन पड़ी ? क्या शहर में महामारी फैली है ? क्या मुहल्ले में हैजा, मलेरिया या ताऊन का ज़ोर है ? या फिर आपके मकान से मक्खी मच्छरों को कुछ ख़ास लगाव हो गया है ?

सुरेश : (**अर्ध नाटकीय ढंग से**) यह तफ़सील तो मुझे मालूम नहीं। हाँ, यह ज़रूर जानता हूँ कि मक्खी और मच्छर इन्सान की सेहत के सबसे बड़े दुश्मन हैं और इनको घर से जितना दूर रखा जाय, उतना ही बेहतर है।

रमेश : बहुत खूब ! यह आप कह रहे हैं ? अगर मैं भूल नहीं करता तो आप जिस घर में पैदा हुए और जिस मुहल्ले में आपने

परवरिश पाई, उसमें आप लोगों से ज्यादा, मक्खी और मच्छर ही रहा करते थे। अगर अब तक वे आपको नुक़सान न पहुँचा सके तो अब यकायक यह ग़लतफ़हमी कैसे पैदा हो गई कि आपके बचपन के ये संगी साथी आपके खून के प्यासे हो गए हैं ?

सुरेश : यह इसलिए कि अब मेरी शादी हो गई है और मेरी बीवी डाक्टर है।

रमेश : ओह, तो यह उनके ज्ञान के लोबान और उनकी शिक्षा की धूप की खुशबू है, जिससे यह सारा घर यूं महक रहा है ?

सुरेश : जी ! और चूँकि जनाब भी इस घर में एक महीने रहेंगे, इसलिए आपकी सेहत की देखभाल और हिफ़ाजत भी उसी तरह की जायगी जिस तरह इस घर के दूसरे लोगों की।

रमेश : **(चौंक कर)** क्या मतलब ?

सुरेश : अभी जाहिर हुआ जाता है ? रामू ! रा...मू...ऊ।

रमेश : यह किसे बुलाया ?

सुरेश : नौकर को।

रमेश : मगर किसलिए ?

सुरेश : अभी बताता हूँ, रामू !

नौकर : **(अन्दर से आवाज़)** जी, जी बाबू जी !

[नौकर अन्दर आता है। उसके नाक और मूंह पर एक कपड़ा बँधा हैं, जैसे जैनी लोगों के बँधा होता है।]

रमेश : अबे यह क्या ? यह नौकर है या कोई जैन-भिक्षु ? इसके मुँह पर कपड़ा कैसे बँधा है ?

सुरेश : इसे जरा जुकाम और हल्की सी खाँसी है। इसकी बीमारी के कीटाणु हम तक न पहुँचें, इसलिए इसे उस वक्त तक मुँह पर यह कपड़ा बाँधना होगा, जब तक यह अच्छा नहीं हो जायगा।

रमेश : लाहौल वला कुव्वत !

सुरेश : अभी से तोबा कर उठे ? अभी तो इब्तदा है ? रामू !

नौकर : जी साहब !

सुरेश : साहब के हाथ धोने को पानी और साबुन लाओ ।

नौकर : जी, बहुत बेहतर ।

[नौकर अन्दर जाता है]

रमेश : अबे यह किसलिये ?

सुरेश : तुम्हें चाय पीनी है न । बिना हाथ धोये आप इस घर में कोई चीज़ उठा कर मुँह तक नहीं ले जा सकते ।

रमेश : यह क्या कानून है ।

सुरेश : क़ानून, क़ानून है और इसमें सन्देह और संशोधन की कोई गुंजायश नहीं ।

[नौकर एक जार में पानी, एक सुलफची, साबुन की टिक्की और तौलिया लेकर आता है ।]

नौकर : बाबू जी, वह रहा पानी, साबुन, तौलिया और चिलमची ।

सुरेश : ठीक, अब तू जा, और चाय का इंतज़ाम कर । लो प्यारे, अब हाथ मुंह धोकर अपने आपको डिसइन्फेक्ट कर लो ।

[उठकर हाथ धोने के लिए मेज़ तक जाता है । पानी देख कर चौंकता है ।]

रमेश : लेकिन यह पानी में क्या है ? यह तो लाल है ?

सुरेश : और क्या ? पोटाश मिला पानी सफ़ेद होता है ? अबे हाथ को कीटाणुओं से पाक करने के लिए ज़रूरी है कि सादा पानी के बजाय पोटाश के पानी से हाथ धोये जायें ।

रमेश : लानत है हाथों के पाक और साफ़ करने पर ।

[साबुन की टिक्की उठाता है और उसे देखते ही चौंक पड़ता है]

रमेश : अबे यह साबुन कैसा ?

पपीता मेदे के लिये राहत-ए-जान है, तो उसके कसियाए हुए कुनीनी मिठास के बावजूद उसे सुबह-सुबह निगल कर मेदे को सवाब पहुँचाओ। अगर पालक में लोहा, लौकी में ताँबा और तोरी में सोना है, तो आलू, भिंडी और गोभी के बाजाए इनके जिस्म की खान को मालामाल बनाओ।

रमेश : (**हँस कर**) बहुत खूब। तो जिस्म को यूँ धातुओं की कीमिया से कुन्दन बनाया जा सकता है। सुना है यूनानी योद्धा ऐची-लियस की एड़ी कच्ची रह गई थी। लेकिन लगता है तुम्हारी औलाद के तो एड़ी भी फौलादी बन जाएगी। जिन्दाबाद, बीसवीं सदी के होने वाले ऐचीलियस के होने वाले बाप।

[**दोनों हँसते हैं। उसी समय रानी, रमेश की बीवी, अन्दर आती है, जो डाक्टरी के आखरी साल में पढ़ रही है। रानी ने डाक्टरों जैसा सफेद कोट पहन रखा है।**]

सुरेश : तुम आ गई? रानी, ये हैं रमेश।

रमेश : नमस्ते, भाभी जी।

रानी : नमस्ते। माफ़ कीजिये, मुझे अस्पताल से आने में देर हो गई।

रमेश : कोई बात नहीं भाभी जी। आप यहाँ नहीं थीं, परन्तु यहाँ की एक-एक चीज़ से आपका यहाँ होना टपक रहा था।

रानी : (**व्यंग न समझ कर**) ओह शुक्रिया। (**सुरेश से**) आपने इन्हें नाश्ता करा दिया?

सुरेश : अभी नहीं। नौकर से चाय बनाने को कहा है।

रानी : आप नहाएँगे तो?

रमेश : (**चौंक कर**) इस समय? भाभी, शाम के वक्त तो मेरे फ़रिश्ते भी नहीं नहा सकते।

रानी : लेकिन सफ़र के बाद हमेशा नहाना चाहिए। इससे धूल के कीटाणु दूर हो जाते हैं और खून का सरकुलेशन ठीक हो

जाता है।

सुरेश : **(रमेश की ओर एक शरारत भरी निगाह से देखते हुए)** तुम खून के सरकुलेशन की बात करती हो, मुझे तो लगता है इसका पूरा सिस्टम बिगड़ा हुआ है। यह तो हलवा···

रानी : **(चौंक कर)** हैं ? हलवा ?

सुरेश : **(और बन कर)** हाँ, डियर, यह तो हलवा माँगता था ? और इसे एक डकार भी आई थी।

रानी : **(चौंक कर)** डकार ? तब तो इनका पेट अपसैट है। ऐसिडिटी भी हो सकती है। फिर तो आप खाना न खाइयेगा। कच्ची लौकी का जूस पीजिये : रामू···रामू।

रमेश : **(बौखला कर)** यह क्या करती हैं भाभी जी !

सुरेश : तुम्हारे पेट का इलाज।

[नौकर का प्रवेश]

नौकर : सरकार चाय तैयार है।

रानी : आइये, चाय पिएँ। और रामू, तुम चाय पिलाने के बाद बाज़ार से लौकी ले आना। साहब रात को सिर्फ लौकी का जूस लेंगे।

[सब अन्दर चले जाते हैं। रमेश का बौखलाहट के मारे बुरा हाल है और सुरेश एक शैतानी मुस्कराहट हँसता है।]

दूसरा दृश्य

[वही कमरा। रानी घबराई-सी अन्दर आती है। सुरेश दरवाज़े में खड़ा मुस्करा कर देख रहा है कि क्या होता है।]

रानी : रमेश जी !

रमेश : जी भाभी जी !

रानी : सुरेश जी कह रहे थे कि रात आपको छींकें आई थीं ?

रमेश : हाँ भाभी जी। लेकिन इसमें परेशानी की क्या बात है ?

रानी : इसमें परेशानी की बात नहीं है ? रमेश जी आप डाक्टर नहीं हैं, इसलिए आपको मालूम नहीं छींकें आने वाली बीमारी की सिम्पटम होती है। आपको नज़ला या सर्दी···

रमेश : भाभी ! मुझे कुछ नहीं होने वाला। पिछले दो साल से अक्सर मुझे छींकें आ जाती हैं।

रानी : (**और चौंक कर**) पिछले दो साल से ?

रमेश : जी !

रानी : (**पूर्ण गम्भीरता से**) तब तो और ख़तरनाक बात मालूम होती है। आपकी नाक की हड्डी बढ़ रही है।

रमेश : मेरी नाक की हड्डी ? (**बड़े नाटकीय ढंग से**) भाभी तब तो शीरनी बाँटिये क्योंकि मैं अपनी इस छोटी और बैठी हुई नाक से बेहद बेज़ार हूँ। इसने रोमाँस की दुनिया में मेरा सारा कैरियर तबाह कर दिया। मैं किसी भी शर्त पर इसे आध-पौन इंच लम्बी और ऊँची करने को तैयार हूँ।

रानी : नहीं नहीं, आप समझे नहीं। यह हड्डी अन्दर ही अन्दर बढ़ती है। इससे नाक नहीं बढ़ती, नजला जुकाम बढ़ता है। आदमी पनप नहीं सकता। आप आज अस्पताल चलिये। मैं आपका एक्सरे कराऊँगी। ई० एन० टी० स्पेशलिस्ट को दिखाऊंगी।

[**सुरेश दरवाज़े से अन्दर आकर, शरारत के लहज़े में**]

सुरेश : ज़रूर दिखाओ रानी ! इसे ज़रूर दिखाओ। यह बहुत बचा बचा और कूदा-कूदा फिरता है।

रमेश : तो यह आग आपकी लगाई हुई है ?

रानी : इन्होंने आग नहीं लगाई, बहुत अच्छा किया है। शरीर की

किसी बीमारी को मामूली नहीं समझना चाहिये। मैं बीमारी की रोक-थाम को इलाज से बेहतर समझती हूँ। आप आज जरूर मेरे साथ चलिये।

रमेश : लेकिन भाभी मैं आपको यक़ीन दिला सकता हूँ कि मेरी नाक की हड्डी नहीं बढ़ रही है। यह मामूली जुकाम हो सकता है, क्योंकि कल मैंने दो बार शर्बत पिया था।

रानी : (**चौंक कर**) क्या यहाँ ? घर में ?

रमेश : जी नहीं, बाज़ार में।

रानी : बाज़ार में ? क्या उसमें बर्फ़ डलवाया था ?

रमेश : ओह, बर्फ़ के बिना शर्बत का क्या मजा ? बर्फ़ तो मैंने दो बार डलवाया था, भाभी।

रानी : (**आँखें फाड़ कर**) दो बार ? और सीधा पानी में डलवाया ? रमेश जी ! आप यह खतरनाक आदत छोड़ दीजिये। बर्फ़ जिस तरह यहाँ बनता है और जिन गन्दे बोरों में लपेट कर रखा जाता है, उससे इसमें कीटाणु मिल जाते हैं और यह कीटाणु गले के टांसिल खराब कर देते हैं। आप बर्फ़ का इस्तेमाल क़तई न कीजिये और अगर करें तो इस तरह कि···

सुरेश : (**बनावटी गम्भीरता से**) साँप मर जाय और लाठी न टूटे। यानी चीज़ ठण्डी हो जाय, लेकिन उसमें बर्फ़ न मिले।

रमेश : अबे फिर बहकने लगा।

रानी : वह बहक नहीं रहे हैं, ठीक कह रहे हैं। बर्फ़ को पानी में डालना नहीं चाहिये। बल्कि पानी को किसी चीज में डाल-कर बर्फ़ से ठण्डा करना चाहिये।

सुरेश : और इस पानी को पहले उबाल भी लेना चाहिये।

रमेश : (**चिढ़ कर**) फिर गर्म-गर्म पानी ही क्यों न पी लिया जाये। ठण्डा करने की क्या जरूरत ?

रानी : **(व्यंग न समझ कर अपनी तरंग में)** अगर गर्म पानी पिया जाए तो एक नहीं, कई रोगों से मुक्ति मिल जाए। गर्म पानी से मुंह की बदबू दूर हो जाए ; टांससिल को सेंक पहुँच जाए ; साँस की नली खुल जाए और पेट की गिरानी दूर हो जाए।

सुरेश : **(बनाते हुए)** लेकिन रानी, गर्म पानी को पीने से पहले फिल्टर भी तो करना चाहिये।

रमेश : **(चिढ़ कर)** उसे फिल्टर करना चाहिये या न चाहिये, लेकिन तुम्हारी खोपड़ी को कूट कर कोरे लठ्ठे में से जरूर कपड़छन करना चाहिये।

सुरेश : **(हँसते हुए)** अबे आ गया उस बन्दर वाली हरकत पर, जिसने सीख देने वाले बया का घोंसला तोड़ दिया था। रानी ! तुम इसकी अक़्ल का भी इलाज कराओ। मुझे तो इसके दिमाग़ में भी ख़लल मालूम होता है।

रानी : आप लोग तो मज़ाक पर उतर आये, मेरी बात बीच ही में रह गई। घर में कौरायजा मिक्सचर और सलफ़ा की गोलियाँ रक्खी हैं। आप हर तीन घण्टे बाद ले लीजियेगा।

रमेश : लेकिन भाभी मेरी भी तो सुनिये। मुझे कुछ नहीं हुआ है। महज़···

सुरेश : **(शरारत दबाते हुए)** यह महज़ ही का तो इलाज है बे। और हाँ रानी ! इसके खाने के लिये क्या किया जाये। इसे नाश्ते में भुने चने और खाने में बेसनी रोटी ही दी जाये न ?

रानी : **(उसी गम्भीरता से)** हाँ ठीक रहेगा।

सुरेश : और सलाद और दही ?

रानी : नहीं नहीं। वह तो बिल्कुल न दीजियेगा।

सुरेश : **(निश्चिन्तता की गहरी साँस लेकर)** बस तुमने नुस्ख़ा और खूराक़ तजवीज कर दी। अब मैं भुगत लूँगा इसे। लेट वे

यहाँ तख्त पर और बँधवा मुंह पर कपड़ा और चबा भुने हुये चने।

[रमेश को तख़्त की ओर धकेलता है। रमेश हल्का-सा विरोध करता है।]

रमेश : छोड़ दे वरना···

[रमेश एक हाथ से सुरेश को धकेलता है और दूसरा हाथ जेब में डालता है तथा कुछ करके निकालता है। उस हाथ से सुरेश के चेहरे को धकेलता है।]

रानी : (समझाते हुए) देखिये ज़िद न कीजिये। आप आराम कीजिये। आज बाहर न जाइये वरना हवा, धूल और गर्द से आपका जुकाम और बढ़ जायेगा।

रमेश : लेकिन भाभी ! यह महज़ आपका वहम और इसकी मक्कारी है, मुझे कुछ नहीं हुआ।

सुरेश : लेकिन तेरा वह रात भर छींकना···ओह···आं (नाक मसलता है और तुरन्त छींकता है। ताबड़ तोड़ तीन छींकें आती हैं।)

रानी : (घबरा कर) आप भी छींके ?

सुरेश : (घबरा कर) नहीं तो रानी ! यूं ही ज़रा नाक में कुछ चला गया।

रमेश : (शेर होकर) अबे अपनी बारी आई तो नाक में कुछ चला गया। अब तू भी लेट और चबा भुने चने। रामू ! रामू !

[रामू दौड़ा-दौड़ा अन्दर जाता है।]

रामू : जी बाबू जी ?

रमेश : जा अन्दर से नाक पर बाँधने की एक पट्टी, पीने की दवा और खाने की गोलियाँ ला। साहब को जुकाम हो गया है।

सुरेश : (जैसे अपील कर रहा हो) रानी !

रानी : नहीं नहीं। आप भी जरूर दवा लीजिये।

सुरेश : लेकिन रानी मैं कसम खा कर कहता हूँ कि कोई भुनगा या मच्छर मेरे नथने में घुस गया था, वरना···

रमेश : **(बात काट कर)** तब तो तुम्हारी नाक को भी स्प्रे करना होगा। भाभी वह सामने रखी मच्छर मारने की स्प्रे गन देना। इसकी नाक में···**(खुद आगे बढ़ता है)**

रानी : **(घबराकर रोकते हुए)** नहीं नहीं। नाक में डालने के ड्राप्स और होते हैं। मैं अभी लाती हूँ।

सुरेश : रानी मेरी तो सुनो।

रानी : जी नहीं, बीमारी के मामले में किसी की नहीं सुन सकती। **(नौकर मिक्सचर की बोतल और गोली ले आता है)** रमेश जी ! आप इन्हें मिक्सचर पिलाइये। मैं नाक में डालने की दवा लाती हूँ।

रमेश : भाभी, तुरन्त जाइये और फ़ौरन दवा लाइये। मिक्सचर मैं इसके हलक में उँडेलता हूँ।

[रानी जाती है]

सुरेश : **(खुशामद से)** रमेश ! यह क्या गजब कर रहा है ? जिस फितने को तू जगा रहा है, वह मेरी तो जान मुसीबत में कर देगा।

रमेश : और मेरी जान जो तूने मुसीबत में डाली ? बड़ा खुश हो रहा था मुझे फँसाकर। लेकिन यह भूल गया कि जो चुटकी मुझे छींकें ला सकती है, वह तुमको भी छिका-छिका कर छका सकती है।

सुरेश : **(चौंक कर)** क्या मतलब ?

रमेश : मतलब साफ़ है। मुझे नसवार सूँघने की लत है। रात छिपकर नसवार सूँघी और छींकें लीं। लेकिन तूने भाभी जी को भड़का दिया। जब मैंने देखा तू शरारत कर रहा है तो मैं भी शरारत

पर उतर आया। मैंने भी न बताया कि छींकें जुकाम की नहीं नसवार की हैं।

सुरेश : (**समझते हुए**) तो···तो जो छींक मुझे आई थीं नसवार की थी।

रमेश : जी ! जब आप बहुत ज्यादा जोश में आ गये और मुझे भी भाभी के डाक्टरी इल्म का शिकार बना कर तसल्ली हासिल करने लगे तो मैंने जेब के अन्दर हाथ डाल कर नसवार उँगली पर लगाई और आपकी नाक पर लगा दी।

सुरेश : ओह तुम किस कदर ख़तरनाक आदमी हो। लेकिन अब क्या होगा ? रानी तो इस बात को मानेगी नहीं।

रमेश : लेकिन मैं भी तो अब नहीं चाहता कि वह इसे नजला और जुकाम की शुरूआत के अलावा कुछ और समझें। वरना मुझे वह तसल्ली क्यों कर हासिल होगी कि मैंने अपनी डाक्टर भाभी को वही मिक्सचर पिलाया और उनके मुंह पर वही पट्टी बाँधी, जो वह अब तक दूसरे के मुंह पर बाँधती आई हैं।

सुरेश : (**खुश होकर**) यानी तुम उनको भी···?

रमेश : यक़ीनन। एक चुटकी नसवार हवा में उड़ाना उनके लिये भी काफी होगा।

सुरेश : (**खुशामद से उसके हाथ पकड़ते हुए**) तो प्यारे एक एहसान और करो। आज तक रानी मुझे अपने ज्ञान की दीक्षा देती आई है। आज मुझे एक खूबसूरत बदला ले लेने दो। उनके ऊपर नसवार मुझे उड़ाने दो।

रमेश : लेकिन एक शर्त पर। कान पकड़ कर चार दफा उठक-बैठक करो और हमें उस्ताद मानो।

सुरेश : (**चार दफा उठक-बैठक करते हुए कहता है**) तुम मेरे उस्ताद हो।

रमेश : अब शागिर्द बनाया। अब तुम्हारी दवाओं की सताई हुई आत्मा को शान्ति मैं जरूर पहुँचाऊँगा। लो यह नसवार की शीशी। इसकी डाट खोल कर इसके मुंह पर उँगली रखो और शीशी को उलटो। **(सुरेश ऐसा ही करता है)** नसवार तुम्हारी उँगली पर लग गई। जब भाभी तुम्हारी नाक में ड्राप्स डालने को झुकें तो आहिस्ता से उँगली उनके चेहरे से छुआ देना।

सुरेश : वाह मेरे उस्ताद। चाल कामयाब हो जाने दे। पगड़ी बाधूँगा और सवा सेर बड़े बताशे बाँटूँगा।

रानी : **(अन्दर से)** रमेश जी !

रमेश : अब आ रही हैं भाभी जी। तू लेट जा सोफ़े पर ही। जी भाभी जी !

रानी : **(अन्दर आकर)** मैं ड्राप्स ले आई हूँ। आपने इन्हें मिक्सचर पिलाया ?

सुरेश : कहाँ से पिलाता ? इसे तो छींकें आये चली जा रही हैं।

रानी : **(घबरा कर)** इन्हें और छींकें आई हैं ?

रमेश : ताबड़ तोड़, पाँच भाभी। आप जल्दी से झुक कर इसकी नाक में ड्राप्स डालिए।

रानी : अभी लीजिए। **(सुरेश पर झुकती है)** आप सीधे होइये और नाक ऊपर उठाइये।

सुरेश : नहीं रानी, मुझे यह पसन्द नहीं। **(सुरेश विरोध करने के लिए हाथ ऊपर करता है और मौका पाकर अपनी उँगली रानी के चेहरे से छुआ देता है।)**

रानी : यह पसन्द का सवाल नहीं, सेहत का सवाल है, बस आप चुपचाप नाक उठाइये और ''और'''आँ।

[लगातार तीन छींकें आती हैं]

रमेश : **(उछलकर बनावटी हैरानी से)** भाभी यह क्या हुआ ?

सुरेश : **(उठकर)** तुम को भी छींकें आ गईं रानी ?

रानी : नहीं तो, यूँ ही नाक में कुछ···

रमेश : आप की नाक में भी कुछ चला गया ? नहीं भाभी, आप को भी जुकाम हो गया। आप भी लेटिये। सुरेश आपकी नाक में ड्राप्स डालता है।

सुरेश : हाँ रानी, तुम यहीं सोफे पर मेरी जगह लेट जाओ। मैं नाक में ड्राप्स डालता हूँ।

रानी : लेकिन मेरी तो सुनिये।

सुरेश : **(बनावटी गंभीरता से)** नहीं रानी, मैं तुम्हारी एक नहीं सुन सकता। यह सुनने का नहीं, सेहत का मामला है। तुम, मैं, यह रमेश, हम सब किसी बहुत ज़बरदस्त इन्फैक्शन का शिकार हो गये हैं। तुम फ़ौरन लेट जाओ, मिक्सचर कौरा-यज़ा पियो, सलफा की गोलियाँ खाओ, नाक में ड्राप्स डलवाओ।

रमेश : और पैनसलीन के इंजैक्शन लगवाओ।

रानी : लेकिन मैं तो अब तक बिल्कुल ठीक थी। यहाँ आते ही नाक में कुछ खुजली सी···

रमेश : खुजली ? तब तो आपकी भी नाक की हड्डी बढ़ना शुरू हो गई मालूम होती है ? भाभी आप भी एक्सरे कराइये और नाक के नथनों का सूये से पंचिंग कराइये।

सुरेश : हाँ रानी ! मैं तुम्हारे सिलसिले में कोई खतरा मोल नहीं ले सकता। हमारी सेहत की नाव की खेवनहार तुम ही तो हो। अगर तुम को कुछ हो गया तो हम कहीं के न रहेंगे। तुम फौरन अपना पूरा इलाज कराओ।

रानी : **(हार कर)** तो फिर दीजिये रामू को आवाज़ और मँगवाइये मिक्सचर, गोलियाँ और नाक पर बाँधने की पट्टी। और हाँ, मेरी प्रिंसिपल मिसेज़ डेविड को फ़ोन कर दीजिये कि वह

आकर मुझे देख जायें।

[**उसी समय मिसेज डेविड, जो पचास वर्ष की क्रिश्चियन महिला हैं, आती हैं**]

मि. डेविड : हैलो रानी।

सुरेश : कौन मिसेज़ डेविड ? गुड मार्निंग।

मि. डेविड : गुड मार्निंग मिस्टर सुरेश ! हाउ इज़ योर लवली वाइफ़ ?

रानी : (**बड़े घबराये लहजे में**) प्रिंसिपल ! आप आ गईं। मैं तो आप ही को फोन करा रही थी। मैं किसी बहुत खतरनाक इन्फैक्शन का शिकार हो गई हूँ।

मिसेज़ डेविड : (**हैरत से**) तुम ? क्या हुआ है तुमको ?

रानी : छींकें !

सुरेश : और तावड़-तोर पाँच छींकें।

रानी : और इनको भी, इनको भी (**सुरेश और रमेश की ओर इशारा करके**)

मि. डेविड : और अगर तुम चाहो तो मैं भी इनमें शामिल हो सकती हूँ ? इस घर में तुमने इतनी फिनाइल और डी.डी.टी. छिड़क रखी है कि खुद मुझे छींकें आते आते रह गईं। यह इतनी फिनाइल और डी.डी.टी. किस लिए छिड़क रखी है ?

रानी : प्रिकौशन यानी एहतियात के तौर पर, डाक्टर। आप ही ने तो बताया था....कि प्रीवैंशन इज बैटर दैन क्योर।

मि. डेविड : बहुत खूब ! जो कुछ मैं तुम को पढ़ा रही हूँ; तुम उस पर इस क़दर जोशोख़रोश से अमल कर रही हो ?

[**नौकर अन्दर जाता है**]

रामू : बीबी जी, यह रहा मिक्सचर, और यह रहीं वह क्या नाम है, सुलफ़ा की गोलियाँ।

मि. डेविड : यह किसलिए मँगाई हैं ?

रमेश : यह मैं बताता हूँ डाक्टर। पहले भाभी ने मेरे लिए मँगवाई, फिर मैंने सुरेश के लिए मँगवाई और अब सुरेश ने इनके लिए मँगवाई।

मि. डेविड : (**चकरा कर**) लेकिन आखिर किस लिए ?

रमेश : इसलिए कि बारी बारी हम सब छींके।

रानी : और इसीलिए मुझे शुबा होता है कि यह ज़रूर कोई ज़बरदस्त इनफैक्शन है।

मि. डेविड : (**अपना सिर पकड़ कर**) रानी ! तुम्हें क्या हो गया है ? डाक्टरी पढ़कर तो तुम अपनी हिम्मत और भरोसा ही खो बैठी मालूम होती हो। छींकें खुदबखुद भी आ जाती हैं और ज़रूरी नहीं कि वह नज़ला या जुकाम ही की निशानियाँ हों। दवा की शीशी की तरफ़ दौड़ने से पहले नेचर को भी अपनी हिफ़ाज़त आप करने का थोड़ा मौक़ा दिया करो।

सुरेश : (**बड़े सताए हुए आदमी की तरह**) मैं यही कहता था डाक्टर इनसे। लेकिन यह मानती ही न थीं। इन्होंने मुझको गुलाबजामुन की बजाय खजूर, हलवे की बजाय दलिया और आलू और भिंडी के बजाय पालक और बथुआ खिला-खिला कर ज़िन्दगी से बेज़ार कर डाला है।

मि. डेविड : (**हँसकर**) क्यों रानी ! तुमने सुरेश ही पर सबसे पहले प्रैक्टिस शुरू की है ? इन बेचारों को गुलाबजामन, हलवा और आलू भिंडी के लिए इतना तरसा डाला ?

रानी : लेकिन प्रिंसिपल ! आपने ही तो बताया था कि घी जल कर चरबी, और सूजी जलकर राख, और चीनी जल कर कारबन हो जाती है।

मि. डेविड : लेकिन मैंने यह तो नहीं बताया कि इन पर इतनी सख्ती से अमल करो, खाना चारा, पीना मिक्सचर और रहना-सहना फिनायल, डी.डी.टी. और कारबोलिक ऐसिड से

दहकता धड़का बन जाए।

रानी : **(बड़े भोलेपन से)** तो मैं कभी-कभी इनको यह सब चीज़ें दे सकती हूँ ?

मि. डेविड : कभी कभी ही नहीं, अक्सर दे सकती हो। हाँ मिक़-दार में···

रानी : **(फिर छींकों को याद करके)** लेकिन प्रिंसिपल ! यह छींकें और यह इनफेक्शन ? इनके लिए क्या करूँ ?

रमेश : इनके लिए आप कुछ न करें भाभी जी। इनके लिए मैं करूँगा भाभी, क्योंकि ये इन्फैक्शन की नहीं, मेरी नसवार की इस शीशी की पैदा करदा हैं जिसे अब मैं सब साहबान की मौजूदगी में सदा सदा के लिए इस खिड़की की राह बाहर फेंकता हूँ।

[रमेश शीशी बाहर फेंकता है और सब मिल कर पेट में बल डालने वाले कहकहे लगाते हैं।]

। परदा ।

पात्र

डाक्टर	**:**	मरणासन्न युवक
नर्स	**:**	युवती
समय	**:**	पुरुष के वेष में
धर्म	**:**	पुरुष के वेष में
मौत	**:**	बुढ़िया के रूप में

[एक साफ, हवादार, रोशन कमरा जिसकी दीवारों पर नीचे सफेद टाइल लगे हैं, ऊपर सफेद रोग़न किया हुआ है और फर्श शीशे की तरह साफ़ और चिकना है। बीच में लोहे का एक पलंग है। इस पर सफ़ेद रोगन किया हुआ है। अस्पतालों के ढंग से बिस्तर लगा है। पास में सफ़ेद रंग की ट्राली टेवल रखी है। बाईं तरफ आक्सीजन सिलेंडर लगा हुआ है जिस से आने वाली रबड़ की नली बिस्तर पर पड़ी है। दाहिनी तरफ़ एक गद्देदार कुर्सी है जिसके आगे एक मेज है जिस पर एक टेबिल लैम्प, कुछ किताबें, काग़ज, पेंसिल और एक पानी का गिलास, गत्ते के गोल टुकड़े से ढका रखा है। बिस्तर पर डाक्टर लेटा हुआ है। लेटा हुआ कहना शायद ग़लत होगा, क्योंकि पलंग का सिराहना इतना ऊँचा किया हुआ है कि डाक्टर पीठ टिकाए बैठा सा नजर आता है। उसका धड़ तक का भाग सफेद चादर से ढका हुआ है। केवल चेहरे का सुर्ख-सफेद रंग दिखाई दे रहा है। पास नर्स खड़ी है।]

डाक्टर : नर्स !

नर्स : यस डाक्टर !

डाक्टर : तुम अब जा सकती हो।

नर्स : क्यों डाक्टर ?

डाक्टर : (गहरी साँस लेकर) इसलिए कि अब तुम्हारे ठहरने की जरूरत नहीं। दवा-दारू, देख-भाल अब सब बेकार है।

नर्स : नहीं डाक्टर, ऐसे न कहिये। अभी आपकी हालत……

डाक्टर : मेरी क्या हालत है, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इसी लिए कह रहा हूँ कि अब तुम जाओ। हाँ, आक्सीजन खुली

रहने दो।

नर्स : नहीं डाक्टर, नहीं। मैं सिविल सर्जन साहब को फोन करती हूँ। वे ज़रूर कुछ न कुछ करेंगे।

डाक्टर : वे अब कुछ नहीं कर सकते नर्स। अब कोई कुछ नहीं कर सकता। इस दुनिया में किसी भी इन्सान के लिए जो कुछ किया जा सकता है वह मेरे लिए किया जा चुका है। मेरे दोस्त अपनी नई से नई दवाएँ इस्तेमाल कर चुके हैं। सर्जन लोग अपने हाथों और औजारों के आखिरी कमाल दिखा चुके हैं। अब मैं न बच सकूँगा। मुझे जाना होगा।

नर्स : (**स्थिति की अनिवार्यता स्वीकार कहते हुए**) ओह डाक्टर, हम कितने मजबूर और लाचार हैं।

डाक्टर : मजबूर और लाचार ? तुम इसे इन्सान की मजबूरी और लाचारी कहती हो ? नर्स शुक्र करो कि हमें मौत की रियायत नसीब है, वरना ज़िन्दगी एक जंजाल और दुनिया बीमारों, बूढ़ों और बदसूरतों का एक घिनावना बलगमी घरोंदा बन जाती। इस दुनिया में जो भी जवानी, जौलानी और रंगीनी देखती हो, वह इसी मौत के दम से है।

नर्स : लेकिन डाक्टर, जवानी की मौत, आपकी जैसी बे-वक्त की मौत……

डाक्टर : (**विश्वास से**) नर्स, कोई मौत बे-वक्त नहीं होती और कोई जवानी में नहीं मरता। जो बदन जिस समय ज़िन्दा रहने की, बीमारी के कीटाणुओं का मुकाबला करने की, मेहनत और जद्दोजहद करने की ताक़त खो बैठता है, मिट जाता है। इस तरह हर इन्सान ठीक उस समय मरता है, जब उसे मर जाना चाहिए।

नर्स : ओह, डाक्टर तुम कितने कठोर, कितने संगदिल हो।

डाक्टर : गनीमत है कि मैं कठोर और संगदिल हूँ—रोता, मुँह बिसूरता

और मातम करता हुआ वह निकम्मा इन्सान नहीं हूँ, **जो** आँखों की रोशनी को रोकर गंवाता है और गालों की लाली को आँसुओं के खार से काट कर पीलेपन में बदलता है। नर्स, मैं डाक्टर हूँ। मेरा काम ज़िन्दगी की रक्षा से रहा है, मौत के मातम से नहीं। लेकिन (**सहसा थकान महसूस करके**) अब मैं ज्यादा देर तुम से बहस न कर सकूंगा, नर्स ! इस लिए जाओ और आराम करो।

नर्स : (**भावपूर्ण अनुरोध से**) नहीं डाक्टर, इस घड़ी इस हालत में मैं आपके पास ही रहूँगी। मैं नहीं जाऊँगी।

डाक्टर : (**थके मगर निर्णयात्मक लहजे में जो आदेश सा सुनाई पड़ता है**) नर्स, तुम सदा मेरे बुलाने पर आई हो और मेरे कहने पर चली गई हो। आज भी ऐसा ही करो—जाओ, गुडबाई।

नर्स : (**विवशता के गिरे हुए स्वर में**) गुड नाइट डाक्टर !

[नर्स चली जाती है। चारों ओर अँधेरा छा जाता है—केवल डाक्टर की चारपाई पर रोशनी पड़ती रहती है। पृष्ठ-भूमि से किसी साज़ की ग़मगीन धुन उभरती है और इस धुन पर डाक्टर की भारी, गम्भीर आवाज़ सुनाई देती है।]

डाक्टर : आज तक जो चल-फिर सकता था, देख-सुन सकता था, सोच और सपनों के ताने बाने बुन सकता था, अब समाप्त हुआ चाहता है। आँखों की रोशनी के दिये बुझे जा रहे हैं और अँधेरे के भूरे विषैले बादल ऊपर नीचे दाएँ-बाएँ से उमड़कर और टूट-टूट कर मुझ पर गिर रहे हैं। धरती यकायक मेरे शरीर को छोड़कर नीचे और नीचे चली गई है और मैं शून्य की शैय्या पर पड़ा रह गया हूँ—मौत के अँधेरे में उस चिंगारी की तरह जिसे कोई तेज़ रफ़्तार रेलगाड़ी रात के स्याह

सन्नाटों में छोड़ जाए—रात के महीन कणों में बदलने के आखिरी दौर से गुज़रने के लिए। **(और गहरी साँस लेकर)** मैं भी जीवन के आखिरी दौर से गुज़रा चाहता हूँ। लेकिन काश—**(डाक्टर बिस्तर से उठता है, सलीपरों में पैर डालता है और मेज़ की तरफ कुछ लड़खड़ाता सा बैठता है)** काश मैं कुछ देर और जी सकता।

[सहसा वातावरण किसी के बर्बर, कर्कश और व्यंगपूर्ण कहकहों से गूंज उठता है और समय डाक्टर के बिस्तर के पास आ खड़ा होता है।]

समय : हा हा हा···तो तू अभी मरना नहीं चाहता ? कुछ देर और जीना चाहता है ? आखिर ठिकाने पर आया। मुझ से पनाह माँगी।

डाक्टर : **(उसकी तरफ़ अँधेरे में देखने की कोशिश करते हुए)** तू कौन है ?

समय : मैं कौन हूँ ? तूने मुझे नहीं पहचाना ? हा हा हा···। ठीक भी है। आज तू मुझे कैसे पहचान सकता है। जिन आँखों और जिन दूरबीनों के बल बूते पर तू तारों की दुनिया में झाँकने के दावे करता है, आज वे कहाँ हैं ? उनकी रोशनी, उनका दिखाव कहाँ है ? बुझ गया। खत्म हो गया। लेकिन अभी तू सुन तो सकता है। आवाज़ तो पहचान सकता है ? तो ले, मेरी आवाज़ सुन और मुझे पहचान।

[एक साथ अनगिनत घड़ियों का टिक-टिक और फिर टन-टन का शोर उभर आता है।]

डाक्टर : ओह यह क्या शोर है, यह क्या बदतमीज़ी है ? **(चीख कर)** इसे बन्द करो।

समय : हा हा हा। कानों के पर्दे फटने लगे ? दहल गया ? पल भर में मेरे कदमों की धमक से। ले—बन्द कर दिया **(शोर बन्द**

हो जाता है) अब मुझे पहचाना ?

डाक्टर : तू समय है ?

समय : **(गर्व से)** हाँ समय—सृष्टि के चक्र का निर्देशक, जीवन की अवधि का अधिनायक ।

डाक्टर : **(कुर्सी पर बैठते हुए हल्के व्यंग से)** पर कहते हैं यह निर्देशक तो रुकना नहीं जानता । इस अधिनायक के पास तो किसी की सुनने की, किसी की सुध लेने की फ़ुर्सत नहीं होती । जिसके मिजाज़ में पारे की सी बेकली है, वह आज इतना स्थिर कैसे हो गया ? इतना चैन कैसे पा गया ?

समय : तेरी पुकार सुनकर ।

डाक्टर : मेरी पुकार सुनकर ?

समय : हाँ । आज जब ज़िन्दगी तुझे मौत के बीहड़ बयाबान में छोड़ गई है, आज जब तेरी हसीन रंगीन दुनिया तुझसे दामन छुड़ा कर चली गई है, आज जब तेरे सगे-सम्बन्धी, संगी-साथी, डाक्टर-हकीम निराश निरुपाय लौट गए हैं, तो तुझे पहली बार मालूम हुआ, तू कितना दीन, हीन और बेकस है। अपनी मजबूरी और लाचारी के अहसास के इस भयानक क्षण में तू सहसा चीख़ उठा, "काश मैं कुछ दिन और जी सकता।" मैं तेरी इसी पुकार को सुन कर आया हूँ । बोल तू अपने जीवन में कितने दिन, कितने महीने, कितने साल की बढ़ोतरी चाहता है ?

डाक्टर : **(विनोदात्मक विस्मय से)** बढ़ोतरी !

समय : **(पूर्ववत गर्व से)** हाँ, कुदरत ने जीवन की डोर मेरे हाथों में दी है । मेरे कारखाने में अनगिनत चर्खियों पर महीने साल और सदियाँ लिपटे पड़े हैं । मैं जिसका जीवन लम्बा करना चाहूँ लम्बा करता चला जाऊँ । जिसकी जिन्दगी की पतंग काटना चाहूँ, उसकी उम्र की डोर कुटक-कर कट से तोड़ दूँ । मैं ज़िन्दगी के धागों और तानों का

मालिक हूँ। मैं तुझे तेरी मुराद बख़्श सकता हूँ।

डाक्टर : लेकिन मुझ पर यह इनायत कैसी ? तू तो किसी की कमान से छूटा हुआ वह तीर है जो आदि से अन्त तक जानदारों के सीनों को भेदता रहेगा। वह मुँह जोर बेलगाम घोड़ा है जो दुनिया के हरे-भरे उद्यान को अपनी जल्लाद टापों से कुचलता रहेगा। वह तूफान है जो ज़िन्दगी की घाटी में मौत के सितम ढाता रहेगा। फिर आज तेरे दिल में यह दर्द कैसा ? छाती में दया की सरसराहट कैसी ?

समय : यह इसलिए कि आज मैंने तुझे, आपे से बाहर और अपने को सबसे बड़ा समझने वाले एक इन्सान को अपने सामने घुटनों के बल गिरा पाया है। कामना का कमण्डल लिए, अपने दरवाज़े पर कुछ दिनों की भीख माँगते पाया है।

डाक्टर : बहुत खूब ! मेरे इस बोल पर कि काश मैं कुछ पल और जी सकता तेरी दिल की कली यूँ खिल उठी ? तू मेरी हस्ती और अपनी असलियत को यूँ भूल बैठा कि मुझ पर हावी होने चला आया ? लेकिन कम-अक्ल, नासमझ, नादान, पागलपन की इस मुहिम पर रवाना होने से पहले यह तो सोचा होता कि आखिर तू है क्या।

समय : (**आवेश में**) क्या कहा ? मैं हूँ क्या ?

डाक्टर : हाँ। आखिर सोच कि तेरी हस्ती क्या है ? तू पदार्थ नहीं, तू गैस नहीं, तू जानदार नहीं, तू बेजान नहीं। तेरा शरीर नहीं, तेरी आत्मा नहीं। तेरी बू नहीं, तेरा रंग नहीं। तेरी पहचान भी होती है तो तारों की गरदिश से या मेरी बनाई घड़ी की सुइयों से।

समय : लेकिन इससे क्या हुआ ? बल्कि तू यह सोच कि इतना कुछ न होते हुए भी मैं कितना कुछ हूँ। मेरा शरीर नहीं, मेरा रूप नहीं, मेरा रंग नहीं लेकिन फिर भी मेरे अस्तित्व के वे सब

लक्षण मौजूद हैं, जो किसी भी जानदार चीज़ में होते हैं।

डाक्टर : मसलन ?

समय : मैं चलता हूँ, गुज़रता हूँ, मेरी अपनी रफ़्तार है।

डाक्टर : बहुत खूब। तेरी ग़लतफ़हमी इस हद तक पहुँची हुई है ?

समय : क्या कहा ?

डाक्टर : यही कि तू वास्तव में समझता है कि तू गुज़रता है ? तेरी अपनी रफ़्तार है ? मेरे दोस्त यह एक ग़लतफ़हमी है। जिसे तू अपनी रफ़्तार कहता है, वह दरअसल मेरे दिमाग़ की हालत का अक्स है, मेरे मन की स्थिति की परछाईं है।

समय : तेरा दिमाग़ तो नहीं चल गया ?

डाक्टर : नहीं मेरे दोस्त। इस घड़ी भी वह ठीक उसी तरह काम कर रहा है जिस तरह अब तक काम करता आया है। ज़रा सोच कि जब मुझे किसी का इन्तजार होता है तो एक पल किस तरह एक सदी की तरह लम्बा गुज़रता है। लेकिन जब वह आ जाता है जिसका मुझे इन्तज़ार होता है तो दिन, महीने और वर्ष ऐसे बीत जाते हैं जैसे कुछ पल। कभी जीवन के सौ वर्ष छोटे मालूम होते हैं और कभी जीवन का एक पल सारी उम्र पर भारी गुज़रता है। बता अगर तेरी रफ़्तार तेरी अपनी होती तो क्या वह मेरी मनःस्थिति के साथ बदल जाती ? मेरे दिमाग़ की दशा के साथ घट-बढ़ जाती ?

समय : **(बेचैनी से)** नहीं, नहीं। यह सचाई नहीं, शायरी है। कवियों की कल्पना की भ्रान्ति फैलाने वाली व्याख्या है।

डाक्टर : यह कवि की व्याख्या नहीं है। यह दार्शनिक का सत्य है। नक्षत्रों, ग्रहों और पहाड़ों पत्थरों की तरह तेरी सृष्टि नियति ने नहीं की। तू प्रकृति की निर्माण-शाला से ढल कर नहीं आया। तेरा सृजन मैंने किया। ब्रह्माण्ड के चक्र को मापने, पदार्थ के बदलते रूपों को आँकने और अपने जीवन के

विकासशील रूप को व्यक्त करने के लिए मुझे एक पैमाने की ज़रूरत थी। मैंने वह पैमाना बनाया, उस पर अतीत वर्त-मान और भविष्य के निशान लगाए और इसे नाम दिया उस कल्पित वस्तु का जो तू है।

समय : **(बिल्कुल विकल होकर)** नहीं नहीं, यह दर्शन शास्त्र का नका-रात्मक तर्क है, विज्ञान का पाखण्ड है। मैं आदि से हूँ और अन्त तक रहूँगा।

डाक्टर : यह मैं भी मानता हूँ। लेकिन इसलिए नहीं कि तेरा अपना कोई अस्तित्व है, बल्कि इसलिए कि जो शक्ति तेरी कल्पना को जन्म देती है वह इस पृथ्वी से कभी लोप न होगी और वह है इन्सान की बुद्धि, उसकी चेतना उसका मस्तिष्क। जब तक विश्व के किसी भी कोने में कोई मनुष्य रहेगा और चेतना और ज्ञान की दौलत से मालामाल रहेगा, वह तेरी कल्पना को जन्म देता रहेगा। लेकिन परछाईं की तरह तू कभी अपना अलग स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध न कर सकेगा क्योंकि वास्तव में तू कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।

समय : यह ग़लत है, यह तेरे तर्क-कौशल और तेरी वैज्ञानिक व्याख्या का भयानक षड्यन्त्र है। मैं अब इसका एक शब्द भी अपने कान में नहीं पड़ने दूँगा। मैं जाता हूँ।

[समय चला जाता है।]

[संगीत ध्वनि उभरती है। समय परास्त होकर टूटे तारे की तरह विलीन हो जाता है। मंच फिर खाली हो जाता है। और अंधकार में फिर डाक्टर की आवाज़ उभरती है।]

डाक्टर : अब रोशनी गुल होती है, साँस की लौ दम तोड़ती है और मेरी यह सुन्दर, सलौनी दुनिया मुझ से जुदा होती है।

धर्म : **(एक शान्त, भारी, गम्भीर आवाज़ सुनाई देती है)** हाँ, बेटा तेरी यह दुनिया अब तुझ से जुदा होती है। तेरे संगी साथी

यार दोस्त तुझ से अलग होते हैं। नश्वर चीजों से तेरा नाता टूटता है और अनश्वर चीजों से तेरा रिश्ता जुड़ता है।

डाक्टर : **(थके स्वर में)** यह इस बार कौन आया ?

धर्म : तूने मुझे नहीं पहचाना।

डाक्टर : नहीं, क्योंकि अब मैं देख नहीं सकता। पर आवाज की गम्भीरता से, लहजे की बुजुर्गाना नर्मी से अन्दाजा लगाता हूँ कि आप कोई ज्ञानी, ध्यानी आदरणीय पुरुष हैं। कृपया अपने परिचय से मुझे अवगत कीजिए।

धर्म : बेटा, मैं वह हूँ जो जन्म से तुम्हारे साथ होता है और मरण तक तुम्हारे साथ जाता है। मैं वह हूँ जो तुम्हें राह दिखाने के लिए तुम्हारे साथ होता है पर जिसकी बात तुम सुनी-अनसुनी करते चले जाते हो। मैं वह हूँ जो तुम्हें तुम्हारे जीवन के सत्य से और संसार के मायामय रूप से, सावधान करता रहता हूँ।

डाक्टर : देखिये बुजुर्ग बाबा, मेरे पास समय बहुत कम है और मैं बात को बेबात तूल देने की उस आदत को बर्दाश्त नहीं कर सकता जो बुढ़ापे में उभर आती है। इसलिए अगर हो सके तो संक्षेप में बताइये आप कौन है ?

धर्म : तू विचलित हो उठा ? मैं जानता हूँ तुझे मेरे ज्ञान और उपदेश से अरुचि है। मेरे नाम पर तेरे पास समय नहीं होता। पर मैं तुझे छोड़ नहीं सकता क्योंकि परमात्मा ने मुझे तेरी आत्मा की रक्षा, तेरे पापी अस्तित्व के उद्धार के लिए भेजा है।

डाक्टर : ओह अब समझा। **(अवसाद के साथ)** तुम धर्म हो।

धर्म : हाँ बेटा, तुम लोग मुझे इसी नाम से पुकारते हो।

डाक्टर : लेकिन तुम्हें मालूम है कि मैं सारी उम्र तुमसे विमुख रहा हूँ ; फिर इस समय आने की आवश्यकता ?

धर्म : आवश्यकता तुझे नहीं, मुझे है बेटा ! क्योंकि मैं तेरी आत्मा का अमानतदार हूँ। मुझे तेरी आत्मा को मोह माया से और

सांसारिक इच्छाओं, आकांक्षाओं से मुक्त करके उस परमात्मा के सामने पेश करना है जो जीवात्माओं का स्रोत है।

डाक्टर : यह मैंने बहुत बार, बहुत पहले सुन रखा है। फिर आज इसे दोहराने का मतलब ?

धर्म : मेरा एक ही मतलब होता है बेटा और वह यह कि तू मुझ में आस्था ले आए और मुझे अवसर दे कि मैं तेरे पापों को धोकर तुझे परमात्मा के पास पहुँचा सकूँ।

डाक्टर : लेकिन तुम्हें मालूम है कि मुझे न तुम्हारी मार्फत पाप धोने की बेकरारी है, न तुम्हारे परमात्मा के पास पहुँचने की बेकली।

धर्म : मुझे मालूम है। जवानी के नशे में, अपनी भौतिक सफलताओं के अहंकार में, तूने अपने को महान् परम शक्तिमान समझा है। तूने परमात्मा को नहीं माना। प्रकृति के किले पर अपने प्रभुत्व की कमन्दें फेंकी और पदार्थ को अपना दास बना कर तू विश्व का स्वामी और शासक समझ बैठा है। पर आज जब तू मर रहा है, तेरा ज्ञान, तेरा विज्ञान, तुझे प्राण दान देने में असमर्थ है तो तू महसूस करेगा कि कोई तुम से भी बड़ा है। तुझ से भी महान् है।

डाक्टर : **(बड़े मनोरंजक व्यंग से)** और वह महान् तुम्हारा परमात्मा है।

धर्म : हाँ, वह परमात्मा जो सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वोपरि है। जो सत्य का स्वरूप है, नेकी का सूरज है, ताप का स्रोत है, गति का केन्द्र है और जग का सृष्टा है।

डाक्टर : खासा शायराना ख्याल है।

धर्म : यह शायराना ख्याल नहीं, असलियत है, पहली और आखिरी।

डाक्टर : पर मेरे विचार में तो यह इन्सान की वह सब से पहली शायरी है, जिसे बदनसीबी से दुनिया आख़री सच्चाई समझ बैठी है।

धर्म : ओह, तेरी आत्मा का इस हद तक पतन हो गया। तू पर-

मात्मा के अस्तित्व से यूँ इन्कार कर उठा।

डाक्टर : बुजुर्ग बाबा, जिसके अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं, जिसके होने का सबूत नहीं, उसके अस्तित्व से इन्कार करने का भी सवाल कहाँ पैदा होता है ?

धर्म : ओह नास्तिक, तुझे आज तक परमात्मा के मौजूद होने का कोई प्रमाण ही नहीं मिला ?

डाक्टर : कोई अन्तिम प्रमाण नहीं।

धर्म : तू फिर बता तुझे किसने जन्म दिया ?

डाक्टर : दो शरीरों के मेल ने।

धर्म : और इन शरीरों को ?

डाक्टर : पदार्थ के तत्वों की एक ऐसी रचना ने, जो गर्मी और गति के जोर से नए नए साँचों में ढलती रहती है।

धर्म : और पदार्थ के इन तत्वों को किसने जन्म दिया ?

डाक्टर : इसका जवाब देना जरूरी है ?

धर्म : (बड़े गर्व से) हाँ, क्योंकि इसी में तेरी धृष्ठता का तोड़ है।

डाक्ठर : तो इसका जवाब पहले तुम दो, मैं बाद मैं दूँगा।

धर्म : तो सुन अज्ञानी, पदार्थ को, तेरे इस मैटर को परमात्मा ने जन्म दिया।

डाक्टर : और परमात्मा को ?

धर्म : मूर्ख, परमात्मा को भी कोई जन्म दे सकता है ? वह तो सदा से था।

डाक्टर : इसके मानी यह हुए कि यह जरूरी नहीं कि हर चीज का बनाने वाला कोई हो। चीजें, बिना बनाए, सदा से हो सकती हैं।

धर्म : हाँ।

डाक्टर : तो फिर मेरा भी जवाब सुनो। पदार्थ को भी किसी ने नहीं बनाया। वह सदा से था।

धर्म : पर कैसे ?

डाक्टर : बिल्कुल वैसे जैसे तुम्हारा परमात्मा था।

धर्म : लेकिन यह कोई जवाब नहीं।

डाक्टर : तो फिर परमात्मा के बारे में जो जवाब तुमने दिया, वह भी कोई जवाब नहीं। बुजर्ग बाबा, जवाब वह होता है जिससे कोई सवाल पैदा नहीं होता। तुमने जो जवाब दिया, उससे भी वही सवाल उठता है जो तुमने मुझसे किया। सच तो यह है बूढ़े बाबा कि अब तक कोई नहीं जानता कि इस सृष्टि की रचना कैसे हुई। पदार्थ को किसने पैदा किया। इस में ताप और गति कहाँ से आई। ये सवाल अभी तक बे-जवाब हैं। लेकिन तुम अपनी अज्ञानता नहीं मानते। जवाब देने की खामखाह कोशिश करते हो।

धर्म : ओह तो शैतान तुझ पर इस हद तक छा गया ?

डाक्टर : पर शैतान कौन है ?

धर्म : वह परमात्मा का बैरी है और धर्म का विरोधी।

डाक्टर : पर तुम तो कहते हो कि परमात्मा सर्वशक्तिमान, सर्वोपरि है। फिर उसके होते हुए यह शैतान मुझ पर कैसे छा गया ?

धर्म : इस लिए कि तेरी आत्मा में खोट है। उसमें बदी का अंश शैतान की ओर झुकता है।

डाक्टर : पर आत्मा में बदी का अंश कहाँ से आया ? तुम तो कहते हो कि आतमा परमात्मा का अंश है। अगर यह सच है तो मुझे बताओ परमात्मा की इस पुत्री में खोट कहाँ से आया ? नेकी के साथ बदी कहाँ से आई ? ज्योति के साथ अंधकार कहाँ से आया। इस से तो यही सिद्ध होता है कि खुद परमात्मा में नेकी के साथ बदी शामिल है। प्रकाश के साथ अन्धकार निहित है। या फिर उसमें इतनी शक्ति नहीं कि बदी को ख़त्म कर सके, अन्धेरे को दूर कर सके, शैतान को परास्त कर सके।

धर्म : **(कुफ्र से काँपते हुए)** यह तू···तू क्या···बक रहा है ?

डाक्टर : जो तुम्हारे दावों का मुँहतोड़ जवाब है। बूढ़े बाबा, तुम बड़े चालाक हो। तुम जानते हो तुम्हारे पास भी मेरी तरह इन मूल प्रश्नों का जवाब नहीं है। तुम जानते हो जो जवाब तुम्हें देना चाहिए उनसे जिज्ञासा शान्त और जबान बन्द नहीं होगी। इसलिए तुम पहले दिमाग को श्रद्धा की भाँग पिलाते हो, जबान को राम नाम की धुन में उलझा देते हो और जब यह सब प्रबन्ध हो जाता है तो तुम तिलक लगाए, माला थामे, एक हाथ उठाए आते हो और लोगों को अपनी वाणी के गांभीर्य और वाक्यों के अर्थहीन आडम्बर से मंत्रमुग्ध करते चले जाते हो। बूढ़े बाबा तुम एक बहुत बड़ा पाखण्ड हो।

धर्म : क्या कहा उद्दण्ड अहंकारी इन्सान ! तू मेरे आध्यात्मिक अलौकिक ज्ञान को पाखण्ड कहता है !

डाक्टर : आध्यात्मिक अलौकिक ज्ञान ? हा हा हा। बहुत खूब बूढ़े बाबा। मालूम होता है श्रद्धा की भाँग दूसरों को पिलाते-पिलाते स्वयं भी पीकर अपनी असलियत भूल बैठे हो। बुज़ुर्ग बाबा, बेहतर हो कि तुम न भूलो कि तुम कोई आध्यात्मिक अलौकिक चीज़ नहीं हो। तुम खालिस इस दुनिया की मौलिक चीज़ हो।

धर्म : क्या कहा ?

डाक्टर : यही कि तुम किसी दूसरे लोक से अवतरित नहीं हुए हो। तुम इसी लोक के कुछ इन्सानों के मस्तिष्क का एक विचार हो। लेकिन ऐसा विचार जो उन्होंने सदियों पहले पेश किया और जो आज की परिस्थितियों में बहुत हद तक ग़लत हो चुका है। बुजुर्ग बाबा यह जो भी कुछ चमक तुम्हारे चेहरे पर है, यह जो भी कुछ आस्था लोगों को तुमसे है, मेरे दम से है। मैंने तुमको विचारा, मैंने तुमको लिखा और मैंने ही तुम्हें माथे से लगाया। मगर अफ़सोस है कि अब मैं ऐसा

नहीं कर सकता क्योंकि तुम्हारे बाद मैंने अनेक धर्मों और शास्त्रों को जन्म दिया है, जो तुमसे कहीं अधिक अच्छे ढंग से मेरा मार्ग दर्शन करते हैं। इस लिए लौट जाओ, उस कोठरी में जो मेरे दिमाग़ की ज्ञानशाला के सबसे पिछले भाग में तुम्हारे लिए सुरक्षित है, और तिलांजलि दे दो इस तमन्ना को कि मैं एक बार फिर तुम्हारी मानसिक दासता क़बूल करूँगा। निकल जाओ, चले जाओ

[धर्म सहम कर डरता हुआ लौट जाता है। संगीत की एक लहर उभरती है और डाक्टर की थकी आवाज सुनाई देती है।]

डाक्टर : तत्व अब बिखरा चाहते हैं। शरीर दीमक के टीलों पर की खाई हुई मिट्टी की तरह बेजान, बेसत हुआ जाता है और चेतना की झिलमिलाती लौ, धुएँ की मिटती हुई लकीर में ठेला चाहती है। इस लिए विदा, ऐ रूप रंग, स्वाद स्वर, स्पर्श और स्पन्दन का ज्योतिर्मय जगत विदा, क्योंकि तेरा एक प्रेमी महसूस करने की ताकत से वंचित होता है।

[सहसा एक बूढ़ी औरत का घिनौना कहकहा सुनाई देता है।]

मौत : ही ही ही। आखिर आ गया मेरे चुंगल में। फँस गया मेरे शिकन्जे में। कितनी दीवारें, कितनी बाड़ें, कितनी रुकावटें खड़ी की थीं मेरे रास्ते में। कितने यत्न किये थे मुझे रोकने के—लेकिन अन्त में—ही ही ही।

डाक्टर : **(थकान के गहरे होते हुए नशे में)** यह कौन बूढ़ी खूसट औरत है, जिसके कहकहे उसके अस्तित्व से भी अधिक घिनौने सुनाई दे रहे हैं? किस शैतान की खाला है यह?

मौत : मैं? ही ही ही। मैं उस शैतान की खाला हूँ जो आदि से अन्त तक तेरी जाति का संहार करता रहेगा, जो तुझे

अपनी मुट्ठी में उठाएगा और कच्ची मिट्टी के खिलौने की तरह चूर-चूर करता रहेगा। जो तेरे आशियानों पर बाज की तरह झपटता रहेगा और तेरे सामने से तेरी नस्ल के चूज़ों को अपने खूनी पंजों में दबा कर ले जाता रहेगा। मैं उस शैतान की खाला हूँ जिसे महाकाल कहते हैं।

डाक्टर : ओह तो तू मौत है।

मौत : हाँ, और तेरी मौत।

डाक्टर : मेरी मौत ?

मौत : हाँ तेरी मौत, और वह मौत जो टाले नहीं टलती।

डाक्टर : बहुत खूब—यानी बड़ी बी अभी तक पुरानी ग़लतफ़हमी में मुबतला हैं।

मौत : क्या कहा ?

डाक्टर : यही कि बेहतर हो अगर तुम पुरानी ग़लत फ़हमियों के धुन्धलकों से निकल आओ और सच के सूरज का सामना करो कि अब तुम अटल नहीं हो।

मौत : मैं अब अटल नहीं हूँ ?

डाक्टर : हाँ। अब मैं तुम्हें रोक सकता हूँ, टाल सक़ता हूँ। खाली हाथ भी वापिस भेज सकता हूँ।

मौत : किस तरह ?

डाक्टर : जिस तरह मैंने तुझे एक नहीं अनेक बार भेजा। याद है इससे पहले तुम मुझ पर तीन वार कर चुकी हो। एक बार तुमने प्लेग भेजा, दूसरी बार तपेदिक और तीसरी बार कार की एक दुर्घटना जिसकी चोट के इलाज के दौरान में मेरे दिल की हरकत भी दो मिनट के लिए बन्द हो गई थी।

मौत : तो इससे क्या हुआ ?

डाक्टर : इससे कुछ नहीं हुआ ? **(विनोदात्मक ढंग से हँसता है)** काश मेरी आँखें आज देख सकतीं। तब तू अपनी उस

खिसियाहट को मेरी आँखों से न छुपा सकती जो इस समय तेरे बूढ़े गालों पर लाली की सूरत में फैल चुकी होगी। बूढ़ी बी, अब तुम अटल नहीं हो।

मौत : यह गलत है। इत्तफ़ाक़ से तू बचने में कामयाब हो गया क्योंकि तेरे पीछे धन और चिकित्सा-साधनों की अपार शक्ति थी। पर आम इन्सान, तेरे करोड़ों भाई······

डाक्टर : वे भी तेरे चंगुल से आजाद हो गए हैं। यह सही है कि आज से कुछ वर्षों पहले तक तुम टाले न टलती थी। तुम्हारा हर वार सफल होता था। तुम महामारी भेजती थी और लाखों आदमी आन-की-आन में तुम्हारे शिकार होकर चूहों की तरह मर जाते थे। लेकिन आज तुम्हारे मलेरिया, प्लेग, चेचक, तपैदिक और नासूर जैसी घातक और हथियार भी बेकार हो गए हैं। आज तुम्हारे मारने की ताकत बहुत कम हो गई है।

मौत : लेकिन ख़त्म नहीं हुई। तू एक बार बच सकता है, दो बार बच सकता है, तीन बार बच सकता है—लेकिन आख़िर-कार······

डाक्टर : हाँ, आख़िरकार मैं ख़त्म होता हूँ। लेकिन अब न तेरी घड़ी निश्चित है और न निशाना अचूक। तू मरीज के सिराहने आ खड़ी होती है पर मेरे आइसोटोप, इन्जैक्शन, आक्सीजन टैंट और ब्लड ट्रांसफ्यूजन तुझे घंटों ही नहीं, दिनों इन्तजार में खड़ा रखते हैं। मुझे देख, तेरे आने के बावजूद भी मैं तीन दिन से जी रहा हूँ।

मौत : लेकिन अब तू और ज्यादा न जी सकेगा। मेरे सिवा अब तुझे कोई न बचा सकेगा।

डाक्टर : तू ? (**कहकहा लगाता है**) क्या खूबसूरत भुलावा है।

मौत : क्या ? यह भुलावा है ?

डाक्टर : और क्या। अब तो तुम भी मुझे नहीं बचा सकती। यह

तुम्हारी ताक़त से बाहर है।

मौत : होश की दवा कर मेरे पंजों में सिसकते कीड़े। मेरी जहरीले साँसों ने शायद तेरे होशोहवास की लौ बुझा दी।

डाक्टर : नहीं, वह अभी भी उसी तरह जल रही है। इसलिए मैं इस क़ाबिल हूँ कि तुझे तेरी असलियत से आगाह कर सकूँ।

मौत : मेरी असलियत से और तू ?

डाक्टर : हाँ बड़ी बी, क्योंकि मेरे ज्ञान के अनुसार इस पूरे विश्व में शायद मैं ही मस्तिष्क के उस कुदाल से लैस हूँ जो यथार्थ की खान खोद कर सच का सोना निकालता है।

मौत : तो दिखा वह सोना जो तूने उस खान से निकाला है और बता कि मैं क्या हूँ।

डाक्टर : तुम ? बड़ी बी तुम बनाने में रह जाने वाली कमी का नतीजा हो।

मौत : यह क्या बड़ है ?

डाक्टर : यह बड़ है न बकवास। यह कोरी सचाई है। तुम कुछ नहीं हो। तुम केवल एक नाम हो उस दुर्घटना का जो पदार्थ की कचाई और बनाने वालों की अपूर्णता के कारण पैदा होती है।

मौत : पदार्थ की कचाई और बनाने वालों की अपूर्णता ?

डाक्टर : हाँ बड़ी बी। तनिक सोचो इन्सान क्यों मरता है। चीज़ें क्यों टूटती हैं। यह इसलिए तो नहीं होता कि तुम आकर उन्हें मारती या तोड़ती हो। यह तो सिर्फ़ इसलिए होता है कि जिस पदार्थ से वह बनी होती है वह कच्चा होता है या जिस ढंग से बनी होती है, वह पक्का नहीं होता है।

मौत : यह कोरा झूठ है।

डाक्टर : यह झूठ नहीं, सौ फी सदी सच है। बड़ी बी कारखाने मशीन बनाते हैं। एक कारखाने की मशीन जल्दी टूट जाती है, दूसरे की देर में। यह इसलिए तो नहीं होता कि तुम एक

पर मेहरबान हो और दूसरे पर नाराज। यह तो केवल इस कारण होता है कि एक कारखाना जो धातु इस्तेमाल करता है वह दूसरे कारखाने की धातु के मुकाबले में कमज़ोर होती है। वह जिस ढंग से ढलाई करता है, दूसरे कारख़ाने के मुकाबले में धातु के कणों को दबाकर उतना ज्यादा ठोस नहीं बना पाता। इसलिए उसकी बनाई चीजों के कण जल्दी बेशक्ल होकर बिखर जाते हैं और हम आदतवश कह उठते हैं, वह टूट गई, उसका वक्त आ गया।

मौत : लेकिन इन्सान ?

डाक्टर : यहाँ भी वही बात है बड़ी बी। अगर प्रकृति की कला पूर्ण होती तो वह इन्सान के रग पट्ठे और माँस पिण्ड इतने मजबूत बनाती कि वह कभी कमजोर न पड़ते। तब इन्सान हमेशा जिन्दा रहता और तुम्हारी कल्पना का जन्म ही न होता।

मौत : **(बौखला कर)** नहीं, नहीं। यह शब्दों का पैशाचिक खेल है। तर्क के धोखे में डालने वाला जाल है, वरना मैं जिन्दगी की मालिक हूँ।

डाक्टर : तुम केवल ज़िन्दगी की चाकर हो।

मौत : **(चिल्ला कर)** क्या कहा गुस्ताख मुंहजोर पाखण्डी !

डाक्टर : **(पूरे गांभीर्य के साथ)** कि तुम चाकर हो, और एक ऐसा चाकर जिसका काम ज़िन्दगी को मारना नहीं नए सिरे से जीवित करना और जवान करना है।

मौत : तू पागल तो नहीं हो गया बदनसीब ?

डाक्टर : बड़ी बी—सच्चाई कभी-कभी इतनी अनोखी, अप्रिय और मूढ़ होती है कि उसका बताने वाला पागल नज़र आता है। लेकिन सच्चाई सच्चाई रहती है और तुम्हारे सिलसिले में वह सिर्फ़ इतनी है कि तुम्हारा ज़िन्दगी पर कोई क़ाबू नहीं।

मौत : (चीख़ कर) मैं उसे मार नहीं सकती ?

डाक्टर : नहीं, क़तई नहीं ।

मौत : तो अभी देख । मैं इसी दम तुझे दिखाती हूँ ।

डाक्टर : किस तरह ?

मौत : तुझे मार कर, तुझे मिटा कर ।

डाक्टर : ग़लत बड़ी बी ! अव्वल तो तुम मुझे मार नहीं सकती लेकिन अगर बहस के लिए मैं यह मान भी लूँ तो मैं अर्ज करूँ कि मर कर भी मैं नहीं मरूँगा ।

मौत : क्या कहा ? तू मर कर भी नहीं मरेगा ?

डाक्टर : नहीं बड़ी बी । ज़रा सोच, तुम्हारे शब्दों में मर कर क्या होगा । मैं या तो जला दिया जाऊँगा या दफ़न कर दिया जाऊँगा । जल कर मेरा शरीर गैस और राख बन जाएगा । कब्र में दब कर खाद बन जाएगा । राख और खाद से वनस्पति उगेगी । गैस से बादल बन कर मेंह बरसेगा और वनस्पति को उगाएगा । फिर इस वनस्पति को चारे के रूप में जानवर और सब्जी के रूप में इन्सान खाएंगे । खाकर उनके शरीर बढ़ेंगे और वे नई जानों को जन्म देंगे । इस तरह मिटने के बजाए मैं एक नए और भिन्न रूप में प्रकट हो जाऊँगा ।

मौत : (बौखला कर) तो···तो क्या मैं इतनी निशक्त हूँ ? कुछ भी नहीं हूँ ?

डाक्टर : नहीं बड़ी बी, ऐसी बात भी नहीं है । वास्तव में तुम एक कुठाली हो ।

मौत : कुठाली ?

डाक्टर : हाँ मिट्टी की वह प्याली जिसमें सुनार टूटे फूटे ज़ेवरों को डाल कर गलाता है ।

मौत : टूटे फूटे जेवरों को ढाल कर गलाता है ? तुम क्या कहना

चाहते हो ?

डाक्टर : जो शायद तुम्हारा सब से खूबसूरत बयान है। तुम प्रकृति की कुठाली हो। जब पदार्थ कमजोर पड़ जाता है, उसमें खोट मिल जाता है, चमक-दमक शक्ति-सबलता नहीं रहती तो प्रकृति उसे लेकर तुम्हारी गोद में डाल देती है। तुम उस पदार्थ को गला कर पुरानी और बिगड़ी शक्लों की गुलामी से आज़ाद करके शुद्ध और स्वतन्त्र तत्वों में बदल देती हो। और ये तत्व नए सिरे से नई सूरतों में, नई चमक-दमक और छवि के साथ सृष्टि के आँगन में लहलहा उठते हैं।

मौत : (जैसे डूबता तिनके का सहारा ले) तब मेरी अपनी ताकत तो हुई ?

डाक्टर : हाँ, बड़ी बी, लेकिन मारने की नहीं- केवल जिलाने की। इस लिए इस गर्व में न फिरो कि तुम जीवन को नष्ट कर सकती हो। इस ग़लतफ़हमी में न रहो कि तुम मुझ से महान या शक्तिमान हो। तुम तो केवल इस बात की ज़मानत हो, इस प्रक्रिया का प्रयोजन मात्र हो कि मैं फिर और फिर और फिर पैदा होता रहूँगा और हर बार जब पैदा हूँगा तो पहले से अधिक सबल, सशक्त और सुदृढ़ हूँगा। **(मौत की गर्दन झुक जाती है)** इस लिए आओ बड़ी बी और मेरे शरीर के इस बिखरते हुए ढाँचे को अपनी कुठाली में ढाल कर शुद्ध और स्वतन्त्र तत्वों में बदल कर उसके नए जीवन का प्रबन्ध करो।

[डाक्टर गिर पड़ता है। मौत बड़े सम्मान के साथ अपने घुटने पर बैठ कर इन्सान पर झुकती है और उसे अपने काले लबादे से ढक कर, नतमस्तक हो जाती है।]

◇ ◇ ◇